श्रीआत्म-बोध

दूसरा भाग

—— ❀ ❀ ——

विविध विद्वानों के महत्व

पूर्ण लेखों का संग्रह

प्रकाशक

आत्म जागृति कार्यालय

बगड़ी (मारवाड़)

वाया सोजत रोड

श्रीआत्म-बोध

दूसरा भाग

प्रस्तावना

प्रथम भाग गुजराती तत्व-संग्रह का अनुवाद है। दूसरे भाग में साहित्य समुद्र का मथन कर संशोधन के साथ संग्रह किया गया है। जैन समाज के लिए ऐसे शुभ संग्रह की यह पहिली ही पुस्तक है। इस में 'दान का स्वरूप' कथा विभाग शिक्षा विभाग, आदर्शजैन, छ काय सिद्धि, श्रीयुत् तत्वज्ञाता भाई वाड़ीलाल मोतीलाल शाह के वचनामृत, श्रीयुत् वशी, श्रीयुत् पाठी पारखी, मिस्टर जेम्स एलन, श्रीटालस्टाय, उपवास-चिकित्सा के लिए अमेरिकन डाक्टर्स का अभिप्राय, बारह व्रतधारी श्रावक के जानने योग्य पिनल कोड के नियम और अनेक मुनिश्रियों के शूलपारम, महारंभादि की शिक्षा आदि का अति परिश्रम पूर्वक संग्रह किया गया है। विषय एक २ ग्रन्थ का सारभूत है। इस एक पुस्तक को पढ़ने से अनेक ग्रंथों और उनके परिश्रम का लाभ मिल सकता है। उपरोक्त सभी कर्ताओं की कृतिया के लिए हम उनके आभारी हैं।

प्रकाशक

आत्मबोध (भाग दूसरा)

अनुक्रमणिका।

काव्य विभाग ।

श्रीआत्म-बोध

दूसरा भाग

आदर्श दान ।

गंगा नदी जैसे सपाटे से बहने वाले हाथ ।
याचक (मांगने वाला) थक जाय, घबरा जाय ।
परन्तु विनीत भाव से आमन्त्रण करता ही रहे ।
कुबेर के भण्डार को क्षण भर में खाली कर दे ।
अन्दर विश्वास जा ठहरा ।
हिमालय से तो नए २ झरने बहते ही रहते हैं ।
मैं वैसा न करूँ तो
मेरी लक्ष्मी गंगा वास उठेगी ।
इधर भ्रष्ट और उधर भी भ्रष्ट हो जाऊँगा ।
लोगों के कल्याण के लिए दान नहीं करे ।
दान करे अपने स्वार्थ के लिए ।

याचक का उपकार माने ।
मैं हूँ आपका सदा का ऋणी ।
वायु के वेग को हँफाने वाले वेगयुक्त पाँवों से
कृपालु फिर ऋण से मुक्त करने के लिए वेग से पधारिए ।

\+ + + +

शिर पर सत्य का मुकुट ।
ऊपर शील का कलगी ।
ललाट पर पुरुषार्थ का सिन्दूर ।
यह सब धर्म के लिए अर्पित है ।
सब का यह मालिक है ।
खुद उसका सेवक है ।

पग।

स्वार्थ पर चलते दुख पाते, पसीजे ।
परमार्थ पर चलते रीझे ।
स्वार्थ में अपग परमार्थ में महावीर !

पुणिया श्रावक

बाप दादों की सम्पत्ति यह तो समाज की ।
मुझे तो केवल बारह आने चाहिए ।
उसके लिए भी फिर समाज का ऋणी हूँ ।
प्रभो, इस ऋण से मुक्त कैसे होऊँ ?

अपनी आय से समाज सेवा करूँ।
नित्य प्रति एक स्वधर्मी को जिमाऊँ।
गृहलक्ष्मी की अनुमति लेकर उसे सहभागिनी बनाऊँ।
कृपालु देव, दो पेट पालने ही की सामग्री है।
सरल तथा सरस एक उपाय है।
मैं तपश्चर्या करूँ।
ना, मुझे भी तो लाभ लेने दो।
अपन दोनों बराबर दान करें।
नित्य एक बन्धु व बहिन को अन्न विद्या आदि आवश्यक दान दें।
समाज सेवा करें जो आत्म सेवा है।
ऋण मुक्त होने को।

अरणक श्रावक

अपने खर्च से जिसकी इच्छा हो उसे।
समुद्र यात्रा कराता है।
मध्य समुद्र में जहाज पहुँचता है।
आकाश में अचानक गड़गड़ाहट
और बिजली चमकती है।
जहाज आकाश पाताल को मुँह करता है।
सब जिन्दगी की आशा छोड़ देते हैं।
इष्ट देव की आराधना सच्चे हृदय से होती है।
देववाणी होती है।
अरणक अपना धर्म छोड़े तो शान्ति हो।

प्राणों के जाते भी धर्म की टेक न छोड़ू ।
हृदय म धर्म टेव भले हा रहत, जीभ से धम त्याग द ।
धर्म छोडने का कहनेवाली जीभ इस देह को दरकार नह
जीभ विना का जीवन श्रेयस्कर है ।
देव परीक्षा करके अपने स्थान को चला जाता है ।

प्रभव चोर

चोरी कहा करनी ?
अपार धन वाले धनी के यहा ।
जिसस उसका मन भी न दुखे ।
चोरी किस गति से करनी ?
नगरवासियों को अपना परिचय देकर ।
निश्चिन्त करके ही ।
धन का गाठ बाँधते समय ।
जम्बु कुमार के उपदेश स ।
कर्म की गाठ को तोडदी ।

माथा सँवारते महराजा

सारे बाल काले और–
हैं यह एक सुफेद क्यों ?
यह तो उपदेशक यमदूत ।
कालापन छोड़ और सफेदी धारण कर ।
ससार असार सयम धार ।

अमृत-वचन

जहां जरूरत हो वहीं टपकते हैं ।
अनमोल मोती गिरते हैं ।
कभी किसी को प्रहार मालूम नहीं पड़ता ।
सत्य, प्रिय रोचक और पाचक ।
विवेक पूर्वक विचार के स्व पर हितकारी वचन जैनी उच्चार करें ।

गुरु-वाणी

गाय ओगालती है ।
फेन के भाग से दूध बनाती है ।
बच्चे से बूढ़े तक को पिलाती है ।
मां के दुग्ध पान के समान पथ्य बनता है ।
धीरे २ रूपान्तर होकर दही और घी का रूप बने ।
खुद पुष्ट और संसार को पुष्ट बनावे ।

× × ×

जैन की तलवार दुधारी ।
जीतना जाने, साथ में हारने की भी युक्ति जाने ।
मारना जाने, साथ में मार खाने की कला जाने ।
जीवन से भी अधिक तीक्ष्ण बुद्धि जीते जाने में काम में लावे ।
जैन तलवार जैसा तेज ।
साथ ही कमल जैसा नरम ।
गिरिराज जैसा बड़ा ।
साथ ही अणु जैसा सूक्ष्म ।
वज्र जैसा कठिन ।

साथ ही पानी जैसा नरम।
अग्नि जैसा उष्ण साथ ही बर्फ जैसा शीतल।
वायु जैसा स्फुरायमान साथ ही वृक्ष जैसा स्थिर।
सिंह जैसा निडर साथ ही हिरन जैसा डरपोक।
सूर्य जैसा प्रखर और चन्द्र जैसा शीतल।

दो महावीर

भरत बाहुबल-

मेरी आज्ञा मान।
प्रभु आज्ञा के सिवाय सर्वथा सदा स्वतन्त्र।
मैं नरेन्द्र हूँ।
तू नर जड़ पिण्ड का तो मैं चैतन्य अहमेन्द्र हूँ।
देख मेरे आधिपत्य की सत्ता।
चक्र रत्न बिजली के पख के समान हुवा करता है।
गर्विष्ठ पुतला देख मेरी मुट्ठी।
अरे यह किस पर ?
हैं, क्या परिणाम होगा ?
अनर्थ।
मुट्ठी पीछी कैसे फिरे ?
क्षमा अमृत से विष का नाश।
मान विष का इस मुट्ठी से नाश करूँ।
लोच किया।
आकाश में देव दुंदुभी। जयनाद।

आदर्श जैन

विश्व के गिरिराज जैसा है।
तलेटी में शान्ति,
चोटी पर मुक्ति है।
इच्छा को दमकती तलवार समझता है।
मोक्ष मार्ग का लेचर है।
इसके दो पाँवों हैं ज्ञान और क्रिया
जिनसे मोक्ष को पहुँच सकता है।
पाप का फल देख बिना पुण्य करता है।
मोक्ष से भी मनुष्य जन्म को मँहगा समझता है।
जैन के दोनों बाजू प्रकाश है।
विषयी के आगे और पीछे दानो ओर अंधकार है।
ज्ञान को मोक्ष की कुञ्जी या स्क्रू समझे।
दूसरे ईंट का जवाब पत्थर से देते हैं।
जैन सत्कार सन्मान से जवाब देता है।

दुःखादि को दुश्मन नहीं परन्तु अनुभव सिखाने वाले उपकारी गुरु समझता है।

समुद्र की भयकर लहरें जैन गिरिराज को तोड़ नहीं सकतीं।
वासना में शान्ति का अभाव समझता है।

अक्षरों की वर्णमाला के सदृश गुण का विकास करता है।

दूसरो को जीतन वाला नहीं परन्तु अपने को जीतने वाला वह जैन ।

जैन का शत्रु जन्मा नहीं और अनन्त काल तक जन्मने का नहीं आज जैन परस्पर लडते हैं यह जैन रूप नहा है ।

जैन को देव बनना सुलभ ,

परन्तु देव को जैन बनना दुर्लभ ।

जैन प्रत्येक वस्तु के चार भाग करता है —

बीज, वृक्ष, पुष्प, फल । मनुष्य, हृदय, विचार, आचरण ।

बाह्य अवस्था को अन्तर अवस्था की छाया समझता है ।

जैन के लिए भला करते बुरा काम करना अपना नाम भूलने जैसा असम्भव है ।

पढे लिखे से जैसे अशुद्ध 'क', 'ख' लिखे जाने मुश्किल हैं ।

वैसे ही जैन के लिए खोटा कार्य अशक्य ।

चोर के लिए चोरी सरल ।

साहूकार के लिए महाकष्ट दायी ।

जगली पत्थर की मूर्ति बने तो प्रकृति को पलटते क्या देर ?

कषाय अधकार है और वह उल्लू जैसे अधम को प्रिय है ।

कषाय की चिनगारी को ज्वालामुखी से भयकर समझे ।

जैनी कषाय को वश करता है ।

इतर जगत् उसके वश होता है ।

नारकी म जाने वाला ही धन को जमीन म गाड़ता है ।

जैन अपनी सम्पदा आकाश में उडा देता है ।

बड से बड़ा रोग कषाय को मानता है ।

... प्रशसा को निरी मूर्खता समझता है ।

दुनियाँ दूसरों को जातने को तड़फती है।
जैन सर्वोपरि अपने को जीतता है।
अपने को जीतने से जगत् जाता जाता है।
अपने को सुधारने से जगत सुधरता है।
ज्वलत पापों को क्षण में भस्म करता है।

शुभ भावना का पाँखें सदा फड़कता ही रहता हैं।
बिना त्याग की भावना वाला बड़े से बड़ा गुलाम है।
विचार के अनुसार हा वर्ताव रखता है।
सुख दु ख का मूल अपने हा को समझता है।
सूक्ष्म बीज में स बड के वृक्ष जैसी श्रद्धा।
जमीन में से सोंठे के रस की आशा रखता है।

मार से छोटा बालक भी ता वश नहीं होता,
प्रेम से केसरी सिंह को वश में करता है।

धन को स्वर्ग म ढेर करें जहाँ कांटों और उदई का लेश न हो। (यह उत्कृष्ट दान से होता है)

कीचड स कनक को कनिष्ट समझे।
तुच्छाधिकार वही नरेश पद।
मोह को मृत्यु शय्या समझे।

(श्रीयुत वसी कृत)

वीरों के खून से बना हुआ यह शरीर है।

शत्रु के बाणों को लज्जित करने वाला इसका अद्भुत हृदय है।

दूसरों को जीतने वाला नहीं परन्तु अपने को जीतने वाला वह जैन।

जैन का शत्रु जन्मा नहीं और अनन्त काल तक जन्मने का नहीं आज जैन परस्पर लड़ते हैं यह जैन रूप नहीं है।

जैन को देव बनना सुलभ,
परन्तु देव को जैन बनना दुर्लभ।

जैन प्रत्येक वस्तु के चार भाग करता है —
बीज, वृक्ष, पुष्प, फल। मनुष्य, हृदय, विचार, आचरण।

बाह्य अवस्था को अन्तर अवस्था की छाया समझता है।

जैन के लिए भला करके बुरा काम करना अपना नाम भूलने जैसा असम्भव है।

पढ़े लिखे से जैसे अशुद्ध 'क', 'ख' लिखे जाने मुश्किल हैं।
वैसे ही जैन के लिए खोटा कार्य अशक्य।
चोर के लिए चोरी सरल।
साहूकार के लिए महाकष्ट दायी।

जंगली पत्थर का मूर्ति बने तो प्रकृति को पलटते क्या देर ?

कषाय अंधकार है और वह उल्लू जैसे अधम को प्रिय है।

कषाय की चिनगारी को ज्वालामुखी से भयंकर समझे।

जैनी कषाय को वश करता है।
इतर जगत् उसके वश होता है।

नारकी में जाने वाला ही धन को जमीन में गाड़ता है।
जैन अपनी सम्पदा आकाश में उड़ा देता है।

बड़े से बड़ा रोग कषाय को मानता है।
स्व प्रशंसा को निरा मूर्खता समझता है।

दुनियाँ दूसरों को जीतने को तडफता है।
जैन सर्वोपरि अपने को जीतता है।
अपने को जीतने से जगत् जीता जाता है।
अपने को सुधारने से जगत् सुधरता है।
ज्वलंत पापों को क्षण में भस्म करता है।

शुभ भावना का पाँसा सदा फडकता ही रहता है।
बिना त्याग की भावना वाला बड़े से बड़ा गुलाम है।
विचार के अनुसार ही वर्ताव रखता है।
सुख दुःख का मूल अपने ही को समझता है।
सूक्ष्म बीज में से बड़ के वृक्ष जैसी श्रद्धा [illegible] र उतारत
जमीन में से साँठे के रस की आशा रख [illegible]
[illegible] बनाता है।
मार से छोटा बालक भी वश [illegible] नहीं [illegible] और मोक्ष का सृष्ट
प्रेम से केसरी सिंह को [illegible]
धन को स्वर्ग म [illegible] य करने में समर्थ नहीं है।
लेश न हो। (य [illegible] बुद्ध के पवित्र शब्द हैं।
कीचड़ [illegible]

आध्यात्मिक जीवन का यह समुद्र है।
मुख के ऊपर चन्द्र का गहरी शीतलता है।
सूर्य जैसा तेजस्वी जगमगाहट हो।
आखों म वीरता का पानी झलक रहा हो।
जीवन पर ब्रह्मचर्य का निशान फहरा रहा हो।
चेहरे में अमृत भरा हो।
जिसको पी-पी कर जगत् विशेष प्यासा बने।
मैत्री, प्रमोद, करुणा, और माध्यस्थ भावना का रेखा ओठों पर लहरें लेती हों।
सुशीलता के भार से भवें नम रही हों।
जीभ की मीठास से पत्थर भी पिघल जाय।
जैन के जीवन में अडिग धैर्य और अखण्ड शान्ति हो।
स्नेहमय नेत्रों म से विश्वप्रेम की नदी बहे।
जैन बोले थोडा किन्तु बहुत मीठा।
जैसे मुँह में से अमृत गिरा रहा हो।
श्रोता वचनामृत का प्यासा बना ही रहे।
मधुर वचन से सब वश होवे।
जैन गहरा ऊँडा है, कभी छलकता नहा है।
जैन के पैर गिरे वहा कल्याण छा जाय।
शब्द गिरे वहा शान्ति छा जाय।
जैन के सहवास से अजीव शान्ति मिलती है।
जैन प्रेम करता है, मोह को समझता ही नहीं है।
जैन के दम्पति धर्म में विनास की गध नहीं है।
जैन सदा जागृत है।

जैन समागी होते हुए भी असंसारी सरीखा रह सकता है।
गुस्से की आग को नम्रभाव हास्य के जल में शान्त करता है।
दूसरे के दोष भूल कर खुद के दोष ढूंढता है।
जैन की गरीबी में संताप की छाया है।
उसकी श्रीमंताई में गरीबों के हिस्से हैं।
सात्त्विकता की चादनी में जैन अहर्निश स्नान करता है।
चमकीली चीज जैन मुफ्त में भी नहीं लेता।
आत्म-सन्मान में मस्त रह कर मिथ्याभिमान का भस्म करता है।
जैन को देख कर दूसरों को वैसा बनने की इच्छा जागृत होती है।

श्री० वा० मो० शाह के वचनामृत

१—स्वधर्मी-वत्सल-वत्स अर्थात् पुत्र सरीखा प्रेम धर्म बन्धुओं से रखना और उनकी वैसी चिन्ता करना।

२—श्रीमंत मूजी से दरिद्री श्रेष्ठ है।

३—कजूस जोड़ और गुणाकार सीखता है, बाकी और भागाकार नहीं सीखता है।

४—कजूस ने साधु जी से याचना की, महाराज आप हमको रोज प्रतिज्ञा देते हैं, आप भी आज दान देने का उपदेश न करने की प्रतिज्ञा कीजिएगा।

५—महमद गजनी मृत्यु के समय धन के ढेर पर सोकर बालक की तरह खूब रोया था, हाय, मेरे साथ इस में से कुछ नहीं चलता। (अन्याय नश्वरता तो रोना न पड़ता)

६—धन को खोदन का कुल्हाडा दान है।

७—दानी वही है जो सरोवर का माफक रात्रि दिन किसी को इन्कार नहीं करता।

८—तीर्थंकर भी मोक्ष जाने के पहिल ३८८८० लाख सोनैया का का दान देते हैं और जगत को दान देना सिखाजाते हैं।

९—दरिया का पानी और कंजूस का धन दोनों बराबर है।

१०—सत्य और प्रेम का उपदेश देकर गुनाहा को रोकने वाली पोलीस वही साधु।

११—लोह की साकल को तोड़ना सहज है किन्तु तृष्णा का।तोडना मुश्किल है।

१२—हीरा, मोती, मानक, रूप पत्थर को कीमता समझता हो परन्तु धर्म का नहीं।

१३—नागिन को वश करना सहज है किन्तु ममता को वश करना मुश्किल है।

१४—लाखों शत्रु मित्र बन सकते है किन्तु एक बुरा काम मित्र नहीं बन सकता है।

१५—रूठे हुए लाखों को समझाना सहज है किन्तु रूठे हुए हंस को समझाना दुष्कर है।

१६—तलवार और बन्दूक के घाव से वचन का घाव तेज है।

१७—दुश्मन से दाव पेच करते हो वैसा मोह से करो।

१८—७२ कला और १८०० भाषा का ज्ञान सरल है किन्तु एक आत्मा का ज्ञान होना मुश्किल है।

१९—दमका बुगलों का, दया का, बाज का, हराम।

का और तप का उपदेश भगरने का वैसे सम्प्रदाय, शिष्य और क्षेत्र का मोह छुटे बिना मुनि का उपदेश निस्सार है।

२०—मछली की घात पारधी से बड़ी मछलियाँ ज्यादा करतीं हैं। वैसे अन्य धर्मी से कलह प्रेमी साधु, और श्रावक जैन धर्म का ज्यादा नाश करते हैं।

२१—इस भव में भूतकाल की खेती को लाट रहे हो और वर्तमान में भविष्य के लिये बीज बो रहे हो।

२२—नाटककार राजमुगट पहिनने से राज्य लक्ष्मी का अधिकारी नहा हैं। वैसे मुनिपने का नाम धरने वाले कल्याण के भागी नहीं हैं।

२३—ईसाईयों ने भारत में धर्म प्रचार के लिये—१३७—मुक्ति फौज नाम का संस्थाएँ, १८७७६—पादरी धर्मगुरु, ८५०० डॉक्टर्स, ४०० सफाखाने, ४३ छापाखानें, ९९ अखबार, ५० कोलेजें ६१० स्कुलें, १७९ उद्योगशालाएँ, ४८०४४ विद्यार्थी ६१ अध्यापक विद्यालय, श्रीमत जैनियों, आपने आपके धर्म प्रचार के लिए क्या कुछ किया है?

२४—जैसे हिन्दू और मुसलमीनों ने आपस में लड़कर स्वराज्य गुमाया वैसे श्वेताम्बर दिगम्बरों ने मूर्ति के लिए, और स्था० साधुओं ने सम्प्रदाय के लिये आज जैन धर्म को मुडन्ल सा बना रक्खा है।

२ —जैसे कचहरी, कानून, और वकील की स्थापना शांति के लिए हुई, आज उतनी ही ज्यादा अशान्ति और कलश वे फैला रहे हैं वैसे, सम्प्रदाय, वल्र, मर्यादा, और आचार्यादि कलश के निमित्त बन रहे हैं।

२६—कोर्ट मनुष्य विकाश के लिये विघ्न भूत है वैसे ही सम्प्रदाय धर्म प्रेम में विघ्न भूत।

२७—वर्तमान राज्य और धर्म सगठन का शिर नीचे और पैर ऊँचे है। कल्प और मर्यादा जैसे मामूली विषय के ऊपर विशेष लक्ष देते हैं। समकित और वात्सल्य भाव तथा व्रतादि के लिये कुछ परवा भी नहीं करते हैं और दूषण को भूषण रूप समझ रहे हैं।

२८—तामसी धर्म जनून सिखाता है, तब सात्विक धर्म गम खाना सिखाता है और जैन धर्म के आचार्यों ने भी जनून सिखाना शुरू किया है इसीसे धर्म के झगडे हो रहे हैं।

२९—दरियाई पानी उन्नति के शिखर पर चढने वाला होता है, तब बराल रूप में भस्म होकर बादल रूप देह धारी बन कर मुसलधार बरसता है वैसे पुराने रीतिरिवाज नाश होकर नये जन्म धारण करते हैं। शिथिलाचारी यतियों के बाद लोंकाशाह का जन्म हुआ। अब नय वीर की अत्यन्त आवश्यकता है।

३०— कष्ट देनेवाले को कष्ट देकर खुश होने का यह जड जमाना है तब पूर्व में क्षमा देकर खुश होने का जमाना था।

३१—कष्ट देने वाले को कष्ट देने से अपने कष्ट में कमी होती नहीं है, परन्तु सदा दुख की वृद्धि होती है।

३२—वैर लेने से नुकसान सिर्फ दो मनुष्यों को नहीं होता किन्तु समस्त जगत् को नुकसान होता है। यह समझ आज के जमाने में प्राय असभव सी है।

३३—धर्म मरजियात है। न कि फरजियात। गुरुभक्ति

३४—स्वामी श्रद्धानंदजी की अविद्या-गुरुकुल की स्थापना न होवे वहां तक घर मे पैर न रखना। है कोई जैन वीर ?

३५—दूसरे के दोष देखना यह खुद के दोष द्वार खुले करने के समान है।

३६—बुद्धि यह धोधार खड्ग है।

श्रीयुत अमृतलाल पाढीयार कृत

१—मन को हडकवा, शरीर का क्षय, बुद्धि को कोलेरा, गरदन को प्लेग की गाठ हाथ और पैर में लक्वे की बीमारी आज के श्रीमंतो को लगी है।

२—एक रोटी का टुकड़ा खाने वाला भी जगत मात्र का ऋणी है।

३—लीलोती के त्याग करने वाले ने क्या अनीति, असत्य, और कूड़ कपट के त्याग किये हैं ?

४—अष्टमी चतुर्दशी में उपवास करने वाले ने क्या बाल विवाह, वृद्ध विवाह, बजोड़ विवाह कन्याविक्रय, वर विक्रय और मुगत मे जीमने का त्याग किया है ?

५५—सवत्सरी से क्षमा के साथ क्या सतोष की याचना की है ?

५६—प्रभुस्तुति करनेवाला ने क्या विकथा निद्रा का त्याग किया है ?

अल्प आरम्भ व महा आरम्भ

१—हाथ में अग्नि लेने वाले को कौनसा कर्म ? और हीरा लेने वाले को कौनसा कर्म ?

२—वेदनीय कर्म बड़ा या मोहनीय कर्म ?

३—वेदनीय कर्म के क्षय के लिये कोशिश करते हो या मोहनीय के लिए ?

४—वेदनीय से डरते हो अथवा मोहनीय से डरते हो ?

५—रेशम पहनने वाला दुखी या जलता वस्त्र पहनने वाला ?

६—कांटे पर सोने वाला दुखी या रेशम की गद्दी पर सोने वाला दुखी ?

७—स्त्री से मोह करने वाला दुखी या अग्नि में गिरने वाला ?

८—मोती का हार पहनने वाला पापी या फूल का हार ?

९—मोती कैसे बनते हैं और फूल कैसे बनते हैं ?

१०—फूल सूंघने वाला पापी या तम्बाकू सूंघने वाला ?

११—अपने हाथ से खेती करके रूई निपजा के कपड़े तैयार करने वाला पापी या चर्बी के कपड़े वाला ?

१२—हजार कोस बैल गाड़ी से यात्रा करने में अधिक पाप या एक मील भर मोटर या रेल से यात्रा करने में ?

१३—घर में सैकड़ों दीपक जलाने वाला पापी या एक बिजली का दीपक जलाने वाला ?

१४—तीन सौ साठ दिन यतनापूर्वक रसोई बनाने में अधिक पाप या एक दिन अज्ञानी नौकर नौकरानी से ?

१५—हजारों वनस्पतियों से बनी हुई औषधि में अधिक पाप या शराब, ब्राण्ड, चरनी, वाली एक बूंद या गोली में ?

१६—फलाहार में ज्यादा पाप या मिठाई में ?

१७—लिलोवा में ज्यादा पाप या कस्तूरी में ?

१८—पुष्प में ज्यादा पाप या इत्र में ?

१९—लाख मन गेंहू के आटे में ज्यादा पाप या परदेशी पाव भर मैदे में ?

२०—तिल्ली के तेल में ज्यादा पाप या मिट्टी के तेल में ?

२१—हाथ के बुने हुवे सैकड़ा थान में ज्यादा पाप या चरब वाले एक तार में ?

२२—सूत के लाख चवर में ज्यादा पाप या चवरी गाय के एक चवर में ज्यादा पाप ?

२३—सौ मन गुड़ का ज्यादा पाप या पाव भर परदेशी शक्कर में ?

२४—घर पर हजारों मन पिसाने में ज्यादा पाप या मील की चक्की (Flour omills) में एक कण पिसाने में ?

२५—घर में कुँआ रखने में ज्यादा पाप या एक नल रखने में ?

२६—हजारों बार गोबर से लिंपन करने में ज्यादा पाप या एक बार फर्श जड़ाने में ?

२७—गौ पालन करके नित्य दूध पीने में ज्यादा पाप या सारी जिन्दगी में एक दफा एक चाय का प्याला पीने में ?

२८—मण भर पानी पीने में ज्यादा पाप या सोडावाटर की एक शीशी पीने में ?

२९—सैकड़ों गायें पालने में ज्यादा पाप या एक मारयाजारू दही दूध घी खान में ?

३०—मण भर मिठाई यतनापूर्वक बनाने में ज्यादा पाप या पाव भर मोल लाने में ?

३१—न्याय उपार्जित लाखों की सम्पत्ति में ज्यादा पाप या अन्याय उपार्जित एक कौड़ा में ?

३२—लाख नारियल की चूड़िया पहिनने वाली को अधिक पाप या एक हाथी दांत की चूड़ी पहिनने में ?

३३—घर पर रसोइ बनाकर जीमने वाला पापी या नुकते में जीमने वाला ?

३४—सौ विवाह में घी जीमने वाला पापी या एक मोकाण में घी खाने वाला ?

३५—कसाई को गो बेचकर रुपये लेने वाला पापी या बेटी को बेचकर रुपये लेने वाला ?

३६—सौ बेटी को न पढ़ाने वाला मूर्ख वा एक बेटे को ?

३७—भयंकर बिमारी में संतान की रक्षा नहीं करने वाला शत्रु या संतान को विद्या नहीं देने वाला ?

३८—बेटा को लाख रुपये की बकशिस देनेवाला उत्तम कि शिक्षा देनेवाला उत्तम ?

३९—अछूत का अन्न खाने वाला अपराधी कि वृद्धलग्न या कन्याविक्रय लग्न में जीमने वाला ?

४०—सन्तान के अंगोपांग काटने वाला पापी कि बाललग्न करने वाला ?

४१—पुत्र को कर्जदार बनाने वाला पापी कि अज्ञानी रखने वाला ?

४२—सन्तान को विलासी व विषयी बनाने वाले उसे मीठा जहर देते हैं ।

४३—धर्म रक्षा के हेतु धर्म कलह करनेवाले धर्म वृक्ष को जड़ काटने वाले हैं । (आज ऐसे दोषी बहुत हैं कारण विज्ञान कम है)

४४—सब दुःख और पापों का मूल कारण अज्ञान है ?

४५—सूर्योदय से सब अन्धकार दूर होता है इसी प्रकार सम्यक्ज्ञान से सब दोष और दुःख नष्ट होकर सच्चे सुखों की प्राप्ति होती है ।

उपसंहार

पाप से जीव मात्र डरते हैं, कारण पाप का फल दुःख है। जैनशास्त्र में पाप का दूसरा नाम है आरम्भ। अल्पारम्भ अर्थात् थोड़ा पाप और और महारम्भ अर्थात् बहुत पाप । अल्प पाप और महापाप की व्याख्या ठीक न समझने से आज अनेक गृहस्थ व त्यागी लाभ की जगह हानियां उठा रहे हैं जैसे बिना परीक्षा सीखे जवाहिर खरीदनेवाला ठगा जाता है।

शास्त्र वचनों को समझने के लिए सद्गुरु की बड़ा भारी जरूरत बतलाई गई है । आज इसका पालन थोड़ा होने से पाप के विषय में अन्धकार आ गया है । जैन जनता प्रत्यक्ष पाप अथवा स्थूल पाप को बुरा मानती है, परन्तु परोक्ष पाप को प्राय भूल रही है । जैसे अल्पतर जीव लगने वाली लकड़ी व

पत्थर को दु:ख का कारण मानता है, कि जब विवेकी मनुष्य उसके असली कारणों को ढूंढता है और उससे बचता है।

जैनों का ध्येय जीवदया होते हुए भी हिंसा बढ रही है, जो थोडी विवेक दृष्टि लगाकर विचार करेंगे तो अनेक दोष स्पष्ट मालूम पड जायगे। शास्त्रकारों ने हिन्सा के २७ प्रकार कहे हैं। मन, वचन काया से पाप करना, कराना व अनुमोदन करना, भूत, वर्तमान और भविष्य काल इन २७ प्रकारों से हिंसा का पूर्ण त्याग वह अहिंसा है।

देखो! श्री उपासक दसाग सूत्र में सब श्रावकों ने केवल सूत के दो वस्त्र रक्खे हैं। घर का घी और केवल एक जाति की घर में बनी हुई मिठाई रक्खी है। नाम खोल कर जावा भर के लिए केवल दो चार शाक रक्खे हैं। अब सुनिया को देखो, सब छोटे बडे काम निज हाथों से ही करने का आता है किसी से कराने का मनाई क्यों है? कारण हाथों से, विवेक से अल्प पाप होता है व स्वावलम्बीपन रहता है। आज मशीनें और उनके लिए अविवेकी नौकरों से काम लेने में हजारों गुना पाप बढ रहा है।

मोल का चाज लेकर जो दाम देते हो उसे उसके धन्धेवालों के हाथ पाप करने में मजबूत होते हैं। एक महापुरुष का कथन है कि "एक हड्डी का बटन लेने वाला हजारों गौवा को काटने वाले कसाइयों के हाथ मजबूत करता है।" इससे यह बात सिद्ध होती है कि अल्पपाप व महापाप का निर्णय विवेक दृष्टि से करना चाहिए। अज्ञान से दुःखवर्धक निमित्तों को भी आशीर्वाद रूप सुखदायी अपना मान बैठते हैं। इसलिए यह शिक्षा लेनी चाहिए कि जीवन की आवश्यकताएं घटाओ। इन्द्रियों को

दमन करो। तृष्णा बुद्धि विवेक प्राप्त करो और लाचारी से करने योग्य कामों में भी जयणा (विवेक) का पालन करो इससे अल्पारम्भी स्वाश्रयी, सुखी जीवन बनेगा।

पीनल कोड़ (सरकारी क़ानून ताज़ीरात हिंद)

हिंसा जन्य अपराधों की सजाएँ

१—किसी को गाली देना, अपमान करना, दिल दुखाना आदि के लिए दो साल की सख्त कैद की सजा कानून धा०३५२।

२—हमला करना, इजा करना आदि के लिये दस साल की सख्त कैद की सजा कानून धा० ३२३।

३—किसी को गैर वाजबी रोक रखना आदि के लिये एक साल की सख्त कैद की सजा कानून धा० ३४१।

४—खून करने वाले को मृत्यु की शिक्षा (फांसी) कानून धारा ३०२।

५—सब प्रकार की स्वतन्त्रता को लूट कर किसी से गुलाम रूप से काम लेने वाले को सात साल की सख्त कैद की सजा कानून न० ३७०।

६—भोजन में विष देनेवाले को फांसी की सजा कानून धारा० ३०२।

७—आश्रित को भोजन न देकर मृत्यु निपजाने वाले को फांसी की सजा कानून न ३०२।

८—मकान में आग लगाने वाले को सात साल की सख्त कैद की सजा कानून धारा ४३५।

९—एक लाठी की मार के पीछे एक साल की सख्त कैद की सजा कानून धारा ३२३।

१०—जाहिर रास्ते पर जानवर काटने वाले को रुपैया २००) का दण्ड कानून धारा २९०।

११—आत्मघात करने वाले को—एक साल की सख्त कैद का सजा कानून धारा० ३०९।

१२—गर्भपात करने व कराने वाले को तीन व सात साल की सख्त कैद की सजा कानून धा० ३१२।

१३—बारह वर्ष से छोटे बालक रखइत रखने से सात साल की सख्त कैद की सजा कानून धा० ३१७।

१४—मृत बालक को गुप्त गाड़ने से—दो साल की सख्त कैद की सजा कानून धा० ३१८।

१५—जबर्दस्ती से वेगार कराने वाले को व शक्ति से ज्यादा काम लेने वाले को एक साल की सख्त कैद की सजा कानून धारा ३७४।

१६—किसी के पशु को दुःख देने वाले को तीन मास का सख्त कैद की सजा कानून न० ४२५

१७—पचास रुपये का नुकसान करने वाले को दो साल की सख्त कैद की सजा कानून धा० ४२७।

१८—किसी के खेत को नुकसान करने वाले को पांच साल की सख्त कैद का सजा कानून धा० ४३०।

१९—किसी को धमकी देने वाले को दो साल की सख्त कैदकी सजा–कानून–धा० ५०५।

१०—व्यभिचार का आरोप रखने वाले को सात साल की सख्त कैदकी सजा कानून–धा० ५०६।

झूठ के अपराधों की सजाएँ

१—झूठी सौगन्द खाने वाले को, छः मास की सख्त कैद की सजा और १०००)(हजार) रुपया दण्डका कानून धा० १७८।

२—किये काम के लिए दस्तखत न करने वाले को तीन मास की सरल कैद की सजा और ५००) रुपये दण्ड का कानून धा० १८०।

३—झूठी बात प्रतिज्ञा पूर्वक करने वाले को तीन साल की सख्त कैद की सजा कानून धा० १८१।

४—झूठा बयान देने वाले को—छः मासकी सरल कैदकी सजा और १०००) रुपैय दण्ड का कानून न० १८२।

५—झूठी गवाही भरने वाले को–सात साल की सख्त कैद की सजा कानून धा० १९३।

६—झूठी खून की गवाही भरने वाले को फांसी की सजा—कानून धा० १९४।

७—दूसरे की रक्षा के लिये झूठी गवाही भरने वाले को—सात साल की सख्त कैद की सजा कानून धा० २०१।

८—बनावटी अंगुठा या सही करने वाले को सात साल की सख्त कैद की सजा कानून न० ४७१।

९—झूठा नामा व हिसाब करने वाले को तथा उसको मदद करने वाले को—सात साल की सख्त कैद की सजा कानून धा० ४७७।

१०—नमूने के माफिक माल न देने से, असली कीमत में नक्ली माल देने वाले को और नक्ली माल का दाम असली माल के बराबर लेने से एक साल की सख्त कैद की सजा कानून धा० न० ४१५।

११—रुपये उधार लेकर वापिस न देने से दो साल की सख्त कैद की सजा कानून धा० ४१५।

१२—तीसरे दरजे का टिकिट लेकर दूसरे दरजे में बैठने वाले को तीन साल की सख्त कैद की सजा कानून धा० ४१८।

१३—खोटा स्टाम्प चलाने वाले को तीन साल की सख्त कैद की सजा कानून धा० ४१९।

१४—किसी का माल छिपाने वाले को तीन साल की सख्त कैद की सजा कानून धा० ३७९।

जकात (दाण) चोरी

१—महसूल पहिले दफे न चुकाने वाले का माल जप्त कर लिया जाता है पीछा नहीं मिलता।

२—दूसरी दफे महसूल न चुकाने वाले का माल जप्त करके और दंड किया जाता है।

३—तीसरी दफे महसूल न चुकाने वाले का माल जप्त करके दंड करते हैं और सख्त कैद की शिक्षा देते हैं।

व्यभिचार के अपराधों में सजा

१—स्त्री की लज्जा लूटने वाले को दो साल की सख्त कैद की सजा कानून धा० ३५४।

२—स्त्री का इच्छा के विरुद्ध भोग भोगने वाले को दस साल की सख्त कैद की सजा कानून धा० ३७६ ।

३—छोटी उमर का स्त्री के साथ भा भोग भोगने वाले को दस साल की सख्त कैद का सजा कानून धा० ३७६ ।

४—पुरुष, पुरुष के साथ स्त्री, स्त्री क साथ, या पशु, के साथ भोग भोगने वाले को दस साल की सख्त कैद की सजा कानून धा० न० ३७७ ।

५—प्रथम लग्न गुम रखकर दूसरी शादी करे तो दस साल की सख्त कैद की सजा, कानून न० ४९५ ।

लालच के अपराधों में शिक्षा

१—रिश्वत लेने वाले और देने वाले दोनों गुनहगार हैं, जिनको तान साल की सख्त कैद का सजा कानून—धा० १६१ ।

२—अच्छा काम करके इनाम लेने वाले को और देने वाले को तान साल की सख्त कैद की सजा कानून न० १६१ ।

३—खोटे सिक्के बनाने वाले को और चलाने वाले को दस साल की सख्त कैद का सजा कानून - धा० २३१ ।

४—खोटे सिक्के पास रखने वाले को तीन सालकी सख्त कैद की सजा कानून धा० २४२ ।

५—खोटे स्टाम्प बनाने वाले को दस साल की सख्त कैद की सजा, कानून धा० २५५ ।

६—खोटे तोले माप रखने वाले को, एक साल का सख्त कैद की सजा कानून धा० २६४ ।

(छ काय सिद्धि भाग १)

(तर्क, अनुमान और वैज्ञानिक दृष्टि)

सुमति—भाई जयन्त, छ काय क्या है ?

जयत—सर्वज्ञ प्रभु ने संसारी जीवों को छः प्रकार से पहिचाना है। उन देह धारी जीवों को छकाय कहते हैं। सिद्ध (मुक्त) जीवों के सिवाय बाकी संसारी जीव छकाय में आ जाते हैं।

सुमति—छकाय के नाम कहोगे भाई ?

जयत—मित्र सुमति सुनो, १ पृथ्वी काय (माटी पत्थर आदि में रहने वाले जीव), २ अपकाय (पानी के जीव), ३ तेजस्काय (अग्नि के जीव), ४ वायुकाय (हवा के जीव) ५ वनस्पतिकाय (लीलोतरी, कंदमूल, काई के जीव), और ६ त्रसकाय (हिलते डुलते जीव-बेइन्द्रिय से पञ्चेन्द्रिय तक),

सुमति—तो भाई क्या त्रसकाय के सिवाय दूसरे जीव हिलते डुलते नहीं।

जयत—ना, भाई, ! दूसरे सब जीव एक स्थान में पड़े रहते हैं। इसीलिए इन जीवों को स्थावर (स्थिर रहने वाले) जीव कहते हैं। वे आपस आप हिलडुल नहीं सकते।

सुमति—भाई जयत ! पृथ्वी आदि स्थावर (स्थिर रहने वाले) में जीव है क्या ? इनकी प्रतीति कैसे हो ? वे दिखाई तो देते नहीं, फिर मानने में कैसे आवे।

जयत—भाई, अपना ज्ञान ऐसा निर्मल नहीं कि जिससे अपन सब जान सकें। यूरोप और अमेरिका की हकीकत समाचार

पत्रों में पढ़कर हम सच मानते हैं। वेदों के कथन को भी सच मानते हैं। इसी प्रकार छ काय का स्वरूप तीर्थंकर प्रभु जैसे सर्वज्ञ बतागए हैं और गणधरों ने यह स्वरूप शास्त्रों में गूँथा है। ऐसे महापुरुषों के वचनों पर अपन को विश्वास रखना चाहिये।

सुमति—मित्रवर माना कि अपन तो विश्वास (श्रद्धा) रक्खेंगे लेकिन दूसरों के दिल मे यह बात कैसे जमाइ जाय? अभी तो विज्ञान का जमाना है। लोक प्रत्यक्ष प्रमाण मांगते हैं। उसका फिर क्या?

जयंत—भाई, विश्वास रखे बिना तो काम ही नहीं चलता। बडा के वचन पर विश्वास न हो तो सच्चे मा बाप कौन है, यह भी मालूम न हो सकता। इसलिए अपने वीतराग देव के वचन पर श्रद्धा रखनी चाहिए। साथ यह भी जरूरी है कि इस बात को तर्क और प्रमाण से भी सिद्ध करने का भी प्रयत्न करें।

छ काय (भाग २)

सुमति—सुज्ञ बन्धु! आपका कहना ठीक है। मुनि महाराज भी फरमाते हैं कि सच्चे (निर्दोष और निस्पृह) देव, गुरु धर्म पर श्रद्धा रखना ही समकित का लक्षण है, परन्तु भाई, अभी के जमाने में केवल श्रद्धा ही से काम नहीं चलता। इसलिए बाहिर के प्रमाण से आप मुझे छ काय जीवों की सिद्धि करके बताओ, ऐसा मैं इच्छुक हूँ।

जयंत—जिज्ञासु भाई, सुन! पृथ्वी काय में चैतन्य (जीव) है, इस बात की सिद्धि के लिए ये प्रमाण हैं —

१—जैसे मनुष्य के शरीर का घाव भरता है वैसे ही खोदी हुई खानें आपसे आप भर जाती हैं।

२—जैसे मनुष्य के पाँव का तला घिसता और बढ़ता है वैसे ही जमीन (पृथ्वी) भी रोजाना घिसती और बढ़ती है।

३—जिस तरह बालक बढ़ता है वैसे पर्वत भी धीरे धीरे बढ़ते मालूम होते हैं।

४—लोह चुम्बक लोह को खींचता है, यह बात उसकी चैतन्य शक्ति को प्रकट करती है। मनुष्य को तो लोह को लेने के लिए उसके पास जाना पड़ता है जब कि लोह चुम्बक तो लोह को आपसे आप खींच लेता है।

५—पथरी का रोग हो जाता है तो बताया जाता है कि मूत्राशय में सचित होकर बढ़ता है।

६—मच्छी के पेट में रहा हुआ मोती भी एक प्रकार का पत्थर होता है और वह भी बढ़ता है।

७—मनुष्य के शरीर में हड्डी होती है लेकिन उसमें जीव होता है उसी प्रकार पत्थर में भी होता है।

सुमति—ज्ञानीमित्र पृथ्वी काय में जीव है, यह साबित करने के लिए आपने तर्क अनुमान से ठीक प्रमाण बताए। अब अप काय के लिए कोई प्रमाण बताने की कृपा करें।

जयत—प्रिय मित्र सुन। अप (पानी) काय जीव की सिद्धि के लिए ये प्रमाण हैं

१—जिस तरह अंडे में रहे हुए प्रवाही पदार्थ में पक्षी का पिण्ड होता है वैसे ही प्रवाही पानी भी

२—मनुष्य तथा तिर्यंच भी गर्भ अवस्था की शुरुआत में प्रवाही (पानी) रूप होते हैं उसी तरह पानी में भी जीव होता है ।

३—जैसे शीत काल मे मनुष्य के मुख में से भाफ निकलता है वैसे ही कूए के पानी से भी गरम भाफ निकलती है

४—जैसे शरदी मे मनुष्य का शरीर गर्म रहता है वैसे ही कूए का पानी भी गर्म रहता है ।

५—गरमी में जैसे मनुष्य का शरीर शीतल रहता है वैसे ही कूए का जल भी शीतल रहता है ।

६—मनुष्य की प्रकृति में जैसे शरदी या गरमी रही हुई है वैसे ही पानी में भी, ऐसी ही प्रकृति है ।

७—जैसे गाय का दूध नित्य निकालनेही से स्वच्छ रहता है और नित्य न निकालने से बिगडता है वैसे ही कूए का पानी रोज निकालने से स्वच्छ और सुन्दर रहता है और न निकालने से बिगड जाता है ।

८—जैसे मनुष्य शरीर शरदी में अकड जाता है वैसे ही शर्दी में पानी ठण्डा होकर बर्फ जम जाता है ।

९—जैसे मनुष्य बाल, युवा और वृद्ध अवस्था में रूप बद लता है वैसे ही पानी की भाफ, बरसात और बर्फ के रूप में अव स्था पलटती है ।

१०—जैसे मनुष्य देह गर्भ में रह कर पकता है वैसे ही पानी बादल के गर्भ में छ मास रहकर पकता है । अपक्व अवस्था में कच्चे गर्भ की तरह ओले (गडे) गिरते हैं ।

तेउ काय (भाग ३)

सुमति—ज्ञानी बन्धु ! पृथ्वी और अपकाय में जीव हैं, यह बात आपने ऐसी सरल रीति से समझा दी है कि यह मेरे दिल में बहुत जल्दी उतर गई, परन्तु भाई ! मुझे माफ करना, अग्नि में तो अपने लोग जल मरते हैं ऐसे स्थान में जीव कैसे हो सकते हैं ? अगर ऐसा है तो तेउकाय में जीवों की सिद्धि करके बतान की कृपा करें।

जयन्त—हां भाई ! इस में शंका की कोई बात नहीं। [illegible] भी फिर जीवों का पिण्ड है। अग्नि श्वासोश्वास बिना [illegible] सकता, उसके कारण सुन—

१—जैसे बुखार में गर्म हुए शरीर में [illegible] है वैसे ही गर्म आग में भी जीव रह सकते हैं।

२—जैसे मृत्यु होने पर प्राणी का शरीर [illegible] है वैसे ही अग्नि बुझने से (जीवों के [illegible]) [illegible] जाता है।

३—जैसे आगिए के शरीर में प्रकाश है [illegible] के जीवों में प्रकाश होता है।

४—जैसे मनुष्य चलता है वैसे [illegible] ([illegible] फैल कर आग बढ़ती है)।

५—*जैसे प्राणी मात्र हवा से [illegible] हैं वैसे [illegible]

---

*धधकते हुए [illegible] यदि तुरन्त [illegible] हो जाते हैं और [illegible] हों और हवा [illegible] जीवित रह सकते हैं [illegible]

भी हवा से जीता है (बिना हवा के जलती हुई आग अथवा दीपक बुझ जाता है ।)

६—जैसे मनुष्य आक्सिजन (प्राण वायु) लेता है और कार्बन (विष वायु) बाहिर निकालता है वैसे ही अग्नि भी अक्सिजन लेकर कार्बन बाहिर निकालती है ।

७—कोई जीव अग्नि की खुराक लेकर जीते हैं जैसे, भरतपुर के पास एक गाँव में एक बछड़ा घास के बदले आग खाता है ।

मारवाड़ के रेगिस्तान में बिना पानी सख्त गर्मी में लाखों चूहे जाते हैं ।

चूने की भट्टी के चूहे अग्नि ही में जीते हैं । फिनिक्स पक्षी को भी अग्नि में पड़ने से नवजीवन मिलता है । आम्र, नीम आदि वृक्ष ग्रीष्म ऋतु म) सख्त ताप में ही फलते-फूलते हैं ।

जिस प्रकार दूसरे जीव गर्मी के बढ़ने पर तथा गर्मी में रह सकते हैं उसी प्रकार अग्नि काय के जीव अग्नि में रह सकते हैं।

सुमति—ठीक है भाई । अब वायुकाय में जीव हैं उनकी सिद्धि कृपा कर बतानी चाहिये ।

जयत—वायुकाय (हवा पवन) भी जीवों का पिण्ड रूप है और यह बात प्रत्यक्ष सिद्ध है ।

१—हवा हजारों कोस चल सकती है और वह एरोप्लेन (हवाई जहाज-विमान) को चलने की गति दे सकती है ।

२—हवा दशों दिशाओं म स्वतन्त्र वेग से पहुँच सकती है और बड़े वृक्ष, महलातों को उखाड़ गिरा सकती है ।

३—हवा अपना रूप छोटे से बड़ा और बड़े से छोटा कर सकता है।

४—हवा में प्रत्येक स्थान में असंख्य उड़ते हुए जीव हैं, यह विज्ञान ने सिद्ध कर दिया है। सूई के अग्र भाग जितनी हवा में लाखों जीव बैठ सकते हैं। उन्हें थेक्सस कहते हैं। भगवान ने तो पहिले वायुकाय में जीव बताए हैं और उन जीवों की दया पालने ही के लिए साधु लोग मुँह पर मुँहपत्ति रखते हैं और इस प्रकार वायुकाय की रक्षा करते हैं। श्रावकों के लिए भी सामायिक, पोषध आदि धार्मिक क्रिया करते समय तथा उसी प्रकार साधुओं के साथ बात चीत करते वक्त भी मुँहपत्ति रखने की आज्ञा है।

छ काय (भाग ४)

सुमति—प्रेमी बंधु! आपने अपार कृपा करके पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु काय में रहे हुए जीवों की सिद्धि कर दिखाई। अब कृपा करके वनस्पति में रहे हुए जीवों की सिद्धि कर बतावें तो मैं आभारी होऊँगा।

जयंत—ज्ञान प्रेमी भाई, पृथ्वी आदि स्थावर जीवों आदि के सम्बन्ध की सारी दलीलें आप समझ गए हैं तो वनस्पति के जीवों की सिद्धि समझने में देर नहीं लगेगी, क्यों कि आज विज्ञान में निपुण सर जगदीशचन्द्र बोस जैसों ने अनेक सभाएँ कर के यह आम तौर पर सिद्ध कर दिया है कि वनस्पति भी जीवों का पिण्ड है।

सुम०—१—मनुष्य जिस तरह माता के गर्भ में पैदा होता है

और अमुक समय तक गर्भ म रहन के बाद बाहर आता है (जन्म लेता है)। उसी प्रकार वनस्पति भी पृथ्वी माता के गर्भ में बीज को अमुक समय तक रखने पर ही अकुर रूप से बाहिर आती है।

२—मनुष्य जैसे छोटी उमर से धीरे २ बढता है वैसे ही वनस्पति भी बढती है।

३—मनुष्य जैसे बाल, युवा और वृद्ध अवस्था पाता है वैसे ही वनस्पति भी तीनों अवस्था पाती है।

४—जैसे शरीर से किसी अग के जुदा होने पर वह निर्जीव हो जाता है वैसे ही वनस्पति डाली, पत्ते आदि के निज मे जुदा होने से निर्जीव हो जाती है।

५—जैसे मनुष्य के शरार म छेद होन से लोह निकलता है वैसे ही वनस्पति में छेद होने मे प्रवाही रक्त निकलता है।

६—जैसे खुराक न मिलने से मनुष्य सूख जाता है और खुराक मे पुष्ट बनता वैस ही वनस्पति खुराक मिलने से चौमासे में विकसित होती तथा खुराक कम मिलने पर सूख जाती है।

७—जैसे मनुष्यादि श्वासोश्वास लेते हैं वैसे ही वनस्पति भी श्वासोश्वास लेती है (दिन म कार्बन ले कर आक्सीजन निकालती है तथा रात में आक्सीजन लेकर कार्बन निकालती है)

८—अनार्य मनुष्य जैसे मासाहारी होत हैं वैसे ही कई वनस्पति मक्खी, पतगिए आदि खाती हैं। (जन्तुओं के पत्तों पर बैठते ही पत्ते वध हो जाते हैं।)

९—चन्द्रमुखी कमल चन्द्रमा के तथा सूर्यमुखी सूर्य के आने से खिलते तथा अस्त होने पर बंध होते हैं।

१०—डाक्टर जगदीशचन्द्र बोस ने प्रत्यक्ष रीति से सिद्ध कर रखा है कि—

"वनस्पति सुन्दर राग के मीठे शब्दों से खिलती है"

"अनिष्ट राग और उखड़ने में दुखी होती है"

"लजालु आदि वृक्ष छूते ही संकुचित होते हैं"

"मूल में खुराक और पत्तों में हवा लेकर जीते हैं" इन कारणों से विज्ञान ने सिद्ध किया है कि वनस्पति काय में जीव है।

त्रस काय में दो, तीन, चार और पाँच इन्द्रिय वाले जीवों का समावेश होता है। इसमें जीव हैं, यह विश्वविख्यात है।

कीड़, लट, जोंक, शंख, सीप को दो इन्द्रियाँ, जू, लाल कीड़, मकोड़ों को तीन मक्खी, मच्छर, बिच्छू आदि को चार तथा मनुष्य, पशु, पक्षियों को पाँच इन्द्रियाँ होती हैं।

उपवास और अमेरिकन डॉक्टर्स

(उपवास चिकित्सा में से)

(१) पेट पूर्ण होने से भोजन से स्वयं अरुचि होती है, फिर भी अज्ञानी लोक अचार चटनी और मसाला के निमित्त से ज्यादा भोजन करके दाग लगाते हैं। यह विष समान हानि करता है।

(२) शरीर खुद खराब वस्तु को स्थान नहीं देता है, मल मूत्र सेडा पसीना आदि को उत्पन्न होते ही फेंक देता है।

(३) बारी बारणे, बंध करके सोने के बाद बारी खोलने से शरदी लगती है किन्तु हवा में सोने से शरदी नहीं लगती है। ज्यादा भोजन करने से मल सड़न से दिमाग में दर्द व शनेसम आदि होते हैं।

(४) शरीर के लिये हवा, बहुत कीमती पदार्थ है हवा से शरीर को कभी नुकसान नहीं होता है।

(५) शरीर में अन्न जलादि के सिवाय सर्व वस्तु विष का काम करती हैं।

(६) शरीर अपने भीतर रात्रि अग्नि लगा देकर रोग को बाहिर निकालता है।

(७) उपवास (लंघन) करने से जठराग्नि रोग को भस्म करती है।

(८) बुखार आने के पहिले बुखार की दवा लेना यह निकलते विष को शरीर में बन्दाने के समान है।

(९) ऐसा एक भी रोग नहीं है जो उपवास (लंघन) से न मिट सके।

(१०) स्वाभाविक मृत्यु से दवाई से ज्यादा मृत्यु होती है।

(११) एक दवाई शरीर में नव बीस रोग पैदा करती है।

(१२) अनुभवी डाक्टरों को दवाई का विश्वास नहीं है।

(१३) बिना अनुभव वाले डाक्टर दवाइ का विश्वास करते हैं।

(१४) दुनिया को निरोगी बनाने का बड़े बड़े डाक्टरों ने एक इलाज ढूंढा है। वह यह है कि दवाइयों को जमीन में गाड़ दो।

(१५) उपवास करने से मस्तिष्क (मगज) शक्ति घटती नहीं है।

(१६) मनुष्य का खान पान पशु संसार से भी बिगडा हुआ है।

(१७) ज्यादा खान से शरीर में विष और रोग बढ़ता है।

(१८) दुष्काल की मृत्यु संख्या से ज्यादा खाने वाले की मृत्यु संख्या विशेष होती है।

(१९) ज्यादा खाना अन्न को विष और रोग रूप बनाने के समान है।

(२०) कचरे से मच्छर पैदा होते हैं और उसको दूर करना परम जरूरी है। उसी तरह ज्यादा खाने से रोग रूप मच्छर पैदा होते हैं और उनको भी दूर करना परम आवश्यक है। दूर करने का एक सरल उपाय उपवास (लंघन) है।

(२१) ज्यों ज्यों अनुभव बढ़ता है त्यों त्यों डाक्टरों को दवाई के अवगुण (नुकसान) प्रत्यक्ष रूप से मालूम होते जाते हैं।

(२२) बडे बडे डाक्टरों का कहना है कि रोग को पहिचानने में हम सर्वथा असमर्थ हैं। केवल अन्दाज से काम लेते हैं।

(२३) रोग उपकारक है। वह चेताता है कि अब नया कचरा शरीर में मत डालो, उपवास से पुराने को जला डालो।

(२४) शरीर को सुधारने वाला डाक्टर शरीर ही है। दवाई को सर्वथा छोड़ विवेक पूर्वक उपवास करने से सौ रोगी में निन्नें रोगी सुधरते हैं वही दवाई लेवें तो निन्न रोगी ज्यादा बिगड़ते हैं।

(२५) जैसे शरार म घाँव स्वय भर जाता है वैसे सब
विना दवाई के मिट जाते हैं ।

(२६) शरीर में उत्पन्न हुए विष को फेंकने वाला रोग
घर के मेले व कचरे कोढाकन तुल्य दवाई है जो थोडे स
अच्छा दिखाई करके भविष्य में भयकर रोग फूट निकलते हैं
कि शुद्ध उपवासों से रोग के तत्त्व नष्ट होते हैं । यह मेले कचरे
फेंकने के तुल्य है । कचरा फेंकने में प्रथम थोडा कष्ट पाछे
सुख इसी प्रकार तपश्चर्या में थोडा कष्ट पड़ता है । कचरा दा
में पहिले थोडा आराम पीछे से बहुत दु ख । इसी प्रकार दवा
से रोग ढाकने में प्रथम लाभ पीछे से बहुत दु ख निरन्तर भो
पडते हैं ।

(२७) ज्यों दवाई बढती जाती है त्यो रोग भी बढते ज
हैं । मनुष्य दवाइयों की आतुरता व मोह छोडकर कुदरत
नियम पालगे तब ही सुखी होंवेंगे ।

(२८) दवाई से रोग नष्ट होता है, यह समझ शरीर
नाश करने वाली है । आज इसी से जनता रोगों से सड़ रही

(२९) सरदी लगने पर तम्बाकू आदि दवाई लेना विष
भीतर रखना है ।

(३०) एडवर्ड सातवे बादशाह का डाक्टर कह गया
कि डाक्टर लोग रोगी के दुश्मन हैं ।

(३१) अज्ञान के जमाने म दवाई का रिवाज शु
हुआ था ।

(३२) दवाइयाँ विष की बनती हैं और वे शरीर मे वि
बढाती हैं ।

(३३) शरीर में विष डालकर सुखी कौन हो सकता है।

(३४) जुलाब लेने से रोग भीतर रह जाता है किन्तु उपवास से रोग जड़ मूल से नष्ट होकर आराम होता है।

(३५) उपवास करने वाले रोगी को मुँह में और नाभ पर उत्तम स्वाद का अनुभव होवे तब रोग का नष्ट होना समझना चाहिए।

(३६) शरीर में जो रोग कार्य करता है वही काम दवाई करता है।

(३७) अनुभवी डाक्टर कहते हैं कि दवाई से रोगी ज्यादा बिगड़ते हैं।

(३८) दवाई न देनी यह रोगी पर महान् उपकार करने के समान है। केवल कुदरती पथ्य हवा भावना आदि परम उपकारक हैं।

(३९) ज्यों ज्यों डाक्टर बढ़ते हैं त्यों-त्यों रोग और रोगी बढ़ते जाते हैं।

(४०) डाक्टर घट जावें तो रोग और रोगी भी घट जावें।

(४१) रोगी के पेट में अन्न न डालने से रोग बिचारा आप ही स्वयं नष्ट हो जाता है।

(४२) दवाई को निकम्मी समझे वही सच्चा डाक्टर है।

(४३) हाथ, पैर आँख को आराम देते हो वैसे उपवास करना यह जठर पेट को आराम देना है।

(४४) अमरिका में डाक्टर लोग रोगी को उपवास करावे

(६) दुष्काल का मुख्य कारण श्रीमन्तों की फिजूल खर्ची है (ब्याह के और मुगते के जीमण, मुख्य कारण हैं)।

(७) देशावर जाते समय पुत्र के पीछे रोना अमंगल, वैसे मृत्यु के बाद रोना भी महा अमंगल है।

(८) मृत्यु समय पश्चाताप करना होगा कि मैंने ठास ठास कर खाया, तिजोरी में जमा किया। किन्तु दुखी, दरिद्री और गरीब को न खिलाया। सुमार्ग में दान न दिया।

(९) हाथ से काम करने में कष्ट मानने वाली सेठानियो ! यह कष्ट क्या प्रसूति समय से भी ज्यादा है ? हाथों से काम करना बन्द करने ही से प्रसूति की वेदना होती है यह काम करारी की मार से बच कर गोली की मार मंजूर करने तुल्य है।

(१०) एक बैल गाड़ी बनाने की क्रिया, और रेल के डिब्बे को बनाने की क्रिया का क्या विचार भी किया है ?

(११) खादी में रेंटिये की क्रिया और मिल में बनते हुए कपड़े में सारे मिल की क्रिया लगती है।

(१२) भिखारी श्रीमंत या गरीब ?

(१३) भिखारी सूखी रोटी के टुकड़े के लिये भीख माँगता है जब कि श्रीमान सीरे पूड़ी के लिए। भीखारी माँग कर लेता है जब कि आज श्रीमंत प्राय झूट कपट चोरी से जगत् का धन हरते हैं और कुमार्ग भोग में लगाते हैं।

(१४) लुटेरे से शाहूकार का त्रास जगत में बढ गया है। इसी से सुख सम्पत्ति और शान्ति घट रही है।

(१५) कचहरी में लुटेरों से शाहूकारों के केस ज्यादा चलते हैं।

(१६) गर्भ बाहिरआने के बाद बालक को दूध न पाने वाली माँ पापिन कि शिक्षा न देने वाली ?

(१७) नीति का धन दूध के समान और अनीति का धन खून के समान है।

(१८) दया देवी का दर्शन धर्म स्थान में नहीं किन्तु कसाइ खाने में होते हैं। कारण वहाँ कठोर हृदय भी अनुकम्पा में पिगल जाता है

(१९) किसान खेती के पहिले बीज की जाच करता है। क्या आपने कभी ब्याह के समय संतान की तदुरस्ती का विचार किया है ?

(२०) एक अशिक्षीत स्त्री देश का नाश करती है और शिक्षित स्त्री देश का उद्धार कर सक्ती है।

(२१) सौ मनुष्य की पैदाइश लूटने वाला एक राक्षस या अन्य कोई ?

(२२) सौ मनुष्य जितना भोजन खर्च करने वाला एक राक्षस या अन्य काइ ?

(२३) जो रस्सा आँत की बनी हुइ है उसको क्या आप कदोरा रूप से पहिन सक्ते हो ?

(२४) जिस वस्त्र के बनने म पचेद्रिय जीवों की चरबी लगती है, उसको क्या आप पहिन सक्ते हो ?

(२५) जुगवा धनवान को निर्धन और निर्धन को भिखारी, (मगता) बनाता है।

(२६) शास्त्र—श्रवण—क्रिया गर्भ धारण समान है जिसे शुद्ध मन स करनी चाहिये। उसका पालन प्रसव तुल्य है। शुद्धान

कुसतान और सुशील सुसतान तुल्य है।

(२७) समय पलटता ही है किन्तु वृत्तिएँ पलटती है क्या?

(२८) वेदांती ईश्वर को और जैनी कर्म को प्रधान पद देकर पुरुषार्थ हीन हो रहे हैं। यह तत्त्व का दुरुपयोग है, शास्त्र का शस्त्र बनाना है

(२९) ज्ञान प्राण है और क्रिया शरीर है।

(३०)प्रात समय प्रभु का नाम लेते हो या तम्बाकू, बीडी, चाय आदि कुव्यसनों का ?

(३१) महावीर के भक्त शूरवीर और धीर थ। सुदर्शन श्रावक ने मोगरपाणी यक्ष का सामना किया था और उसको पराजित कर भगा दिया था। निर्भय व सत्य शीलधारी पुरुष सदा अजेय होते हैं

(३२) पूर्व काल में कन्या दान के साथ गौ दान देने का रिवाज था। आज विषय वर्धक वस्तुओं का दान दिया जाता है।

(३३) युरोपियनों ने तुम्हारा कितना अनुकरण किया ? और तुमने उनका कितना अनुकरण किया ? प्राय मौज शोक का अनुकरण किया है परंतु साथ पुरुषार्थ, धैर्य ऐक्य उदारता आदि उनके नहीं लिये।

(३४) दस मनुष्य की रक्षा करने योग्य एक युवा श्रीमत की रक्षा के लिये दस मनुष्य नौकर चाहिये।

(३५) विलायती घी और आटा सस्ता देत हैं और यहाँ के घी और आटे को महँगे दाम मे वे लोग खरीदते हैं इसके रहस्य को कब समझोगे ?

(३६) दूध, दही, घी कीमती या बीडी ?

(३७) क्या वीर्य की दूध, दही, या जितनी भी रक्षा करते हो ?

(३८) थाकड़े के ज्ञाता ! आपके ज्ञान का सार क्या है। क्या घर के आस पास समुर्छिम मनुष्य तो नहीं मर रहे हैं। घर की, व देश की हालत व जैनियों की दशा को भी कभी विचारोगे? और फिजुल खर्च हटाओगे? शिक्षा प्रचार करके न्याय नीति सम्पन्न सत्य, शील, पुरुषार्थ और संयम में श्रेष्ठ प्रजा तैयार करने में कितना तन धन मन अर्पण करोगे? अंत में सब छूटेगा तो इस स अच्छ चत्र म बीज बो देखो, अन्यथा बीज (धन तन बुद्धि) सड जायेंगे (नष्ट हो जायेंगे) और शुद्ध व उत्तम खेत म बीज का बोदओगे तो अपार निपज मिलगा।

(३९) मिथ्यात्वी हजारों ऐसे हैं जिन्होंने सारी पूँजी विद्या प्रचार में देकर जिंदगी सेवा भाव म ल दी है, जैन श्रावक कितने ऐसे हुए हैं?

(४०) रोज परिग्रह को पाप का मूल अनंत दुःख बढ़ाने वाला, इह लोक परलोक में भय, चिन्ता, शोक और व्याकुलता पैदा करने वाला चिंतन करते हो। क्या वह सच्चे हृदय की भावना हो तो जैन समाज इतना गिरी हुई रह सकती है ?

(४१) गोद लेने का मोह इसी जन्म म अनक दुःख का कारण प्रगट दीख रहा है फिर भी मिथ्या रूढ़ि, लोक लज्जा व अज्ञान वश कष्ट उठा कर सब धन औरों को देते हैं। क्या आप परमार्थ में खर्चना अच्छा नहीं मानते? यदि उत्तम है तो आज से गोद लने का त्याग कर दवें और गोद आकर अनर्थ को मदद न देवें व कलह से बचें

(४२) गोद लेना अर्थात पाप को गोद में बिठाना है, वह पुत्र जितने विषय भोग आरंभ करेगा और जितनी पीढ़ी नाम रहेगा वहाँ तक सब पाप में हिस्सा ठेट तक चला आवेगा। नाम का अन्त करने से पाप का अन्त हो जाता है।

(४३) रामलाल, वरदमान आदि कोई भी आपका नाम ले आपके समान नामधारी हजारों मनुष्य हैं। आपको उस नाम से क्या लाभ ?

(४४) नाम तो पुद्‌गल का पिंड है कर्म है निश्चय से दुखदायी है उससे बचो सब लक्ष्मी को सत्य जैन धर्म का प्रचार करने में विद्या व सदाचार का पुनरोद्धार करने में लगाने से आपका नाम अजर अमर होवेगा।

(४५) जैसा बीज खेत में डालोगे वैसे फल लगेंगे, एक सेर जहर पीकर एक ताला उलटी करने से मरण से नहीं बच सकते, एक सेर जहर की जगह पाव सेर वमन करने से कुछ बचने की आशा है। इसी प्रकार ससार खर्च, घर खर्च से अनेक गुण उत्तम दान दोगे तो बचने की आशा है। सब जीवों को सद्‌बुद्धि प्राप्त होकर सचरित्र की प्राप्ति होओ, यही भावना है।

काव्य विलास

श्री परमात्म छत्तीसी

दोहे

परम देव परमातमा, परम ज्योति जगदीस।
परम भाव उर आन के, प्रणमत हूँ नमि शीस ॥१॥

एक ज्यों चेतन द्रव्य है, जिनके तीन प्रकार।
बहिरातम अन्तर तथा, परमातम पद सार ॥२॥

बहिरातम उसको कहे, लखै न आतम स्वरूप।
मग्न रहे परद्रव्य में, मिथ्यावंत अनूप ॥३॥

अंतर-आतम जीव सो, सम्यग्दृष्टी होय।
चौथे अरु पुनि बारवें, गुणथानक लो सोय ॥४॥

परमातम पद ब्रह्मको, प्रकट्यो शुद्ध स्वभाव।
लोकालोक प्रमान सब, झलकै जिनमें आव ॥५॥

बहिरातमा स्वभाव तज, अंतरातमा होय।
परमातम पद भजत है, परमातम ह्वै सोय ॥६॥

परमातम सो आतमा, और न दूजो कोय।
परमातम को ध्यावते, यह परमातम होय ॥७॥

परमातम यह ब्रह्म है, परम ज्योति जगदीश।
परसे भिन्न निहारिये, ज्योति अलख सोइ ईश ॥८॥

श्री ब्रह्मविलास में से साभार उद्धृत।

जो परमात्मा सिद्धमे, सो ही यह तन माहि ।
मोह मेल दृग राग रहा, जिसमे सूझे नाहि ॥६॥
मोह मैल रागादिका, जा छण कीजे नाश ।
ता छण यह परमातमा, आपहि लहे प्रकाश ॥१०॥
आतम सो परमातमा, परमातम सो सिद्ध ।
बीचकी दुविधा मिट गई, प्रकट हुई निज रिद्ध ॥११॥
मैं ही सिद्ध परमातमा, मैं ही आत्माराम ।
मै हो ज्ञाता ज्ञेय को, चेतन मेरा नाम ॥१२॥
मैं अनत सुख को धनी, सुखमय सुभ्नसभाव ।
अविनाशी आनदमय, सो हूँ त्रिभुवन राय ॥१३॥
शुद्ध हमारो रूप है, शोभित सिद्ध समान ।
गुण अनत से युक्त यह, चिदानद भगवान ॥१४॥
जैसो सिद्ध क्षेत्रे बसै, वेसो यह तनमाहि ।
निश्चय दृष्टि निहारते, फेर रच कुछ नाहि ॥१५॥
कर्मन के सयोग से, भये तीन प्रकार ।
एक आतमाद्रव्य को, कर्म नचावन हार ॥१६॥
कर्म सघाती आदि के, जोर न कछु बसाय ।
पाई कला विवेक की, रागद्वेष विन जाय ॥१७॥
कर्मों की जड राग है, राग जरे जड़ जाय ।
प्रकट होय परमातमा, भैया सुगम उपाय ॥१८॥
काहे को भटकन फिरे, सिद्ध होने के काज ।

राग द्वेष को त्याग दे, भैया सुगम इलाज ॥१९॥
परमातम पद को धनी, रंक भयो विललाय।
रागद्वेष की प्रीति से, जनम अकारथ जाय ॥२०॥
राग द्वेष की प्रीति तुम, भूलि करो जिय रंच।
परमातम पद ढाक के, तुमहिं किये निरजंच ॥२१॥
जप तप संयम सब भलो, राग द्वेष जो नाहिं।
राग द्वेष के जागते, ये सब सोये जाहिं ॥२२॥
रागद्वेष के नाशते, परमातम परकाश।
रागद्वेष के जागते, परमातम पद नाश ॥२३॥
जो परमातम पद चहै, तो तू राग निवार।
देख सयोगी स्वामि को, अपने हिये विचार ॥२४॥
लाख बात की बात यह, तुझको दिनी बताय।
जो परमातम पद चहै, राग द्वेष तज भाय ॥२५॥
रागद्वेष के त्याग बिन, परमातम पद नाहिं।
कोटि-कोटि जप तप करै, सबहि अकारथ जाहिं॥२६॥
दोष है यह आतमको, रागद्वेष का संग।
जैसे पास मजीठ के, वस्त्र और ही रंग ॥२७॥
वैसे आतम द्रव्य को, रागद्वेष के पास।
कर्मरंग लागत रहै, कैसे लहै प्रकाश ॥२८॥
इन कर्मों का जीतना, कठिन बात है मीत।
जड़ खोदे बिन नहिं मिटै, दुष्ट जाति विपरीत॥२९॥

लब्धिपत्नी के किये, ये मिटने के नाहिं।
ध्यान अग्नि परकाश के, होम देउ तिहिं माहिं॥३०॥
ज्यों दारुके गजको, नर नहिं सके उठाय।
तनक आग संयोग से, छण इक में उड़ जाय॥३१॥
देह सहित परमातमा, यह अचरज की बात।
रागद्वेष के त्याग तें, कर्मशक्ति जर जात॥३२॥
परमात्मा के भेद द्वय, रूपी अरूपी मान।
अनत सुखमें एक से, कहन के दो स्थान॥३३॥
भैया वह परमातमा, वैसा है तुम माहिं।
अपनी शक्ति सम्हाल के, लखो वेग ही ताहिं॥३४॥
रागद्वेष को त्याग के, धर परमातम ध्यान।
ज्यौं पावे सुख सम्पदा, 'भैया' इम कल्यान॥३५॥
संवत विक्रम भूप को, सत्रह से पचास।
मार्गशीर्ष रचना करी, प्रथम पक्ष दुति जास॥३६॥

कर्म नाटक के दोहे

कर्म नाट नृत्य तोड के, भये जगत जिन देव,
नाम निरंजन पद लह्यो, करूँ त्रिविधि तिहिं सेव॥१॥
कर्मन के नाटक नटत, जीव जगत के माहिं।
उनके कुछ लक्षण कहूँ, जिन आगम की छाहिं॥२॥
तीन लोक नाटक भवन, मोह नचावन हार।

नाचन है जिव स्वागधर, कर कर नृत्य अपार ॥३॥
नाचन है जिव जगत में, नाना स्वाग बनाय।
देव नर्क तिरजच अरु, मनुष्य गति मे आय ॥४॥
स्वाग धरे जब देव को, मानत है निज देव।
यही स्वाग नाचत रहे, ये अज्ञान की टेव ॥५॥
और न को औरहि कहे, आप कहे हम देव।
अह के स्वाग शरीर का, नाचन है स्वयमेव ॥६॥
भये नरक मे नारकी, करने लगे पुकार।
छेदन भेदन दुःख सहे, यही नाच निरधार ॥७॥
मान आपको नारकी, त्राहि त्राहि नित होत।
यह तो स्वाग निर्वाह है, भूल करो मन कोय ॥८॥
नित अध गति निगोद है, तहा वसत जो हंस।
वे भव स्वाग हि खेल के, विचित्र धर्यो यह वश ॥९॥
उछर उछर के गिर पड़े, वे आवे इस ठौर।
मिथ्यादृष्टि स्वभाव धर, यही स्वाग शिरमौर ॥१०॥
कबहु पृथिवी काय मे, कबहु अग्नि स्वरूप।
कबहु पानी पवन मे, नाचत स्वाग अनूप ॥११॥
वनस्पति के भेद यह, श्वास अठारह वार।
तामे नाच्यो जीव यह, धर धर जन्म अपार ॥१२॥
त्रिकलत्रय के स्वाग मे, नाचे चेतन राय।
उमी रूप परिणम गये, वरने कैसे जाय

उपजे आय मनुष्य मे, धरै पचेन्द्रिय स्वाग ।
मद आठो मे मग्न बन, मानो ग्वाई भाग ॥१४॥
पुण्य योग भूपति भये, पाप योग भये रक ।
सुख दुग्व आपहि मान के, नाचत फिरै निशक ॥१५॥
नारि नपुसक नर भये, नाना स्वाग रमाय ।
चेतन से परिचय नहीं, नाच नाच गिर जाय ।
ऐसे काल अनत से, चेतन नाचत तोहि ।
'अज' हू आप सभारिये, सावधान किन होहि ॥१७॥
सावधान जो जिव भये, ते पहुँचे शिव लोक ।
नाच भाव सब त्याग के, विलसत सुख के थोक ॥१८॥
नाचत है जग जीव जो, नाना स्वाग रमत ।
देखत है उस नृत्य को, सुख अनत विलसत ॥१९॥
जो सुख होवे देखकर, नाचन मे सुख नाहि ।
नाचन मे सब दु ग है, सुख निज देखन माहि ॥२०॥
नाटक मे सब नृत्य है, सार वस्तु कछु नाहि ।
देखो उसको कौन है? नाचन हारे माहि ॥२१॥
देखे उसको देखिये, जाने उसको जान ।
जो तुझको शिव चाहिये तो उसको पहिचान ॥२२॥
प्रकट होत परमात्मा, ज्ञान दृष्टि के देत ।
लोकालोक प्रमाण सब, क्षण इकमे लखलेत ॥२३॥
भैया नाटक कर्मते, नाचत सब ससार ।
नाटक तज न्यारे भये, वे पहुँचे भवपार ॥२४॥

इन्द्रिय से उमराव जिह, विषय देश विचरंत।
ऐसा उस मन भूप को, को जीते बिन संत ॥११॥
मन चंचल मन चपल अति, मन बहु कर्म कमाय।
मन जीते बिन आतमा, मुक्ति कहो किम थाय ॥१२॥
मन सम योद्धा जगत में, और दूसरा नाहिं।
ताहि पछाड़े सो सुभट, जीत लहे जग माहि ॥१३॥
मन इन्द्रिन को भूप है, ताहि करे जो जेर।
सो सुख पावे मुक्ति के, इसमें कछु न फेर ॥१४॥
जब मन मूंदो ध्यान में, इन्द्रिय भई निराश।
तब इह आतमा ब्रह्मको, कीने निज परकाश ॥१५॥
मनसे मूरख जगत में, दूजो कौन कहाय?
सुख समुद्र को छोड़के, विष के वन में जाय ॥१६॥
विष भक्षण से दुःख बढ़े, जाने सब संसार।
तदपि मन समझे नहीं, विषयन से अति प्यार ॥१७॥
छहो खंड के भूप सब, जीत किये निज दास।
जो मन एक न जीतियो, सहे नर्क दुख वास ॥१८॥
छोड़ पास की भू पड़ी, नहीं जगत सा काज।
सुख अनंत विलसत है, मन जीते मुनिराज १६॥
अनेक सहस्र अपछरा, बत्तिस लक्ष विमान।
मन जीते बिन इन्द्र भी, सहे गर्भ दुःख आन ॥२०॥
छाड घरहि बनमें बसे, मन जीतन के काज।

तो देखो मुनिराज ज्यों, विलसत शिवपुर राज ॥२१॥
अरि जीतन को जोर है, मन जीतन को ग्याम ।
देख त्रिगडी भूप को, पड़त नर्क के धाम ॥२२॥
मन जीते जो जगत में, वे सुख लहे अनन्त ।
यह तो बात प्रसिद्ध है, देख्यो श्री भगवत ॥२३॥
देख बडे आरभ से, चक्रवर्ति जग माहि ।
फेरत ही मन एक को, चले मुक्ति में जाहि ॥२४॥
बाह्य परिग्रह रच नहिं, मनमें धरे विकार ।
तादुल मच्छ निशलिए, पडे नरक निरधार ॥२५॥
भावन ही से बध है, भावन ही से मुक्ति ।
जो जाने गति भाव की, सो जाने यह युक्ति ॥२६॥
परिग्रह कारन मोक्ष को, इम भाख्यो भगवान ।
जिह जिय मोह निवारियो, तिहि पायो कल्यान ॥२७।

ईश्वर-निर्णय दोहे

परमेश्वर जो परमगुरु, परमज्योति जगदीश ।
परमभाव उर आनके, वदत हू नमि शीश ॥१॥
ईश्वर ईश्वर सब कहै, ईश्वर लखै न कोय ।
ईश्वर को सो ही लखै, जो समदृष्टी होय ॥२॥
ब्रह्मा विष्णु महेश जो, वे पाये नहिं पार ।
तो ईश्वर को और जन, क्यों पावे निरधार? ॥३॥

ईश्वर की गति अगम है, पार न पायी जाय।
वेद स्मृति सब कहत है, नाम भजोरे भाय ॥४॥
ईश्वर को तो देह नहिं, अविनाशी अविकार।
ताहि कहै शठ देह धर, लीनों जग अवतार ॥५॥
जो ईश्वर अवतार ले, मरे वह पुन सोय।
जन्म मरन जो भरत है, सो ईश्वर किम होय ॥६॥
एकनकी घा होयकें, मरे एक ही आन।
ताको जो ईश्वर कहें, वे मूरख पहिचान ॥७॥
ईश्वर के सब एक से, जगत माहिं जे जीव।
नहिं किसी पर द्वेष है, सब पै शान्त सदीव ॥८॥
ईश्वर से ईश्वर लड़े, ईश्वर एक कि दोय।
परशुराम अरु राम को, देखहु किन जग लोय ॥९॥
रौद्र ध्यान वर्ते जहा, वहा धर्म किम होय।
परम बंध निर्दय दशा, ईश्वर कहिये सोय ? ॥१०॥
ब्रह्मा के च्यारशीस हो, ना छेदन कियो ईस।
ताहि सृष्टिकर्ता कहै, रख्यों न अपनो सीस ॥११॥
जो पालक सब सृष्टि को, विष्णु नाम भूपाल।
जो मार्यो इक बाण सें, प्राण तजे ततकाल ॥१२॥
महादेव वर दैत्य को, दीनो होय दयाल।
आपन पुन भाग्यो फिरा, राख लियो गोपाल ॥१३॥
जिनको जग ईश्वर कहैं, वह तो ईश्वर नाहिं।
ये ह ईश्वर ध्यावते, सो ईश्वर ... माहिं ॥१४॥

जो ज्ञाता कर्ता कहै, लगे दोष असमान ॥५॥
ज्ञानी पै जड़ता कहां, कर्त्ता ताको होय।
पण्डित हिये विचार के उत्तर दीजे सोय ॥६॥
अज्ञानी जड़तामयी, करे अज्ञान निशङ्क।
कर्ता भुगता जीव यह, यों भाखे भगवन्त ॥७॥
ईश्वर की जिन जात है, ज्ञानी तथा अज्ञान।
जो जीव को कर्त्ता कहो, तो है बात प्रमान ॥८॥
अज्ञानी कर्त्ता कहे, तो सब बने बनाव।
ज्ञानी हो जड़ता करे, यह तो बने न न्याय ॥९॥
ज्ञानी करता ज्ञान को, करे न कछु अज्ञान।
अज्ञानी जड़ता करे, यह तो बात प्रमान ॥१०॥
जो कर्त्ता जगदीश है, पुण्य पाप क्यों होय?
सुख दुःख किसको दीजिये? न्याय करो बुध लोय ॥११
नरकन में जिव डारिये, पकड़ पकड़ के बाह।
जो ईश्वर करता कहो, तिनको कहा गुनाह ॥१२॥
ईश्वर की आज्ञा बिना करन न कोऊ काम।
हिंसादिक उपदेश को, कर्त्ता कहिये राम ॥१३॥
कर्त्ता अपने कर्म को, अज्ञानी निर्धार।
दोष देत जगदीश को, यह मिथ्या आचार ॥१४॥
ईश्वर तो निर्दोष है, करता भुक्ता नाहिं।
ईश्वर को कर्ता कहैं, वे मूरख जगमाहिं ॥१५॥

वैराग्य-बोध के दोहे

रागादिक दूषण तजे, वैरागी जिनदेव।
मन वच शीस नमाय के, कीजे तिनकी सेव ॥१॥
जगत मूल यह राग है, मुक्ति मूल वैराग।
मूल दोनों के ये कहे, जाग सके तो जाग ॥२॥
क्रोध मान माया धरत, लोभ सहित परिणाम।
येही तेरे शत्रु है, समझो आतमाराम ॥३॥
इन ही चारों शत्रु को, जो जीते जग माहिं।
सो पावें पथ मोक्ष को, यामें धोखो नाहिं ॥४॥
जो लक्ष्मी के काज तू, खोवत है निज धर्म।
सो लक्ष्मी संग ना चले, काहे भूलत भर्म ॥५॥
जो कुटुम्ब के कारने, करत अनेक उपाय।
सो कुटुंब अगनी लगा, तुझको देत जलाय ॥६॥
पोषत है जिस देह को, जोग त्रिविधि के लाय।
सो तुझको छाण एक में, दगा देय गिर जाय ॥७॥
लक्ष्मी साथ न अनुसरे, देह चले नहि संग।
काढ काढ सुजनहि कहे, देख जगत के रंग ॥८॥
दुर्लभ दश दृष्टांत सम, सो नरभव तुम पाय।
विषय सुखन के कारने, चले सर्वस्व गुमाय ॥९॥
जगहि फिरत कइ युग भये, सो कछु कियो विचार।

प्रश्नोत्तर।

देव श्री अरिहन्त निरागी, दयामूल सुचि धर्म सोभागी।
हित उपदेश गुरु सुसाधु, जे धारत गुण अगम अगाधु ॥१॥
उदासीनता सुख जग माही, जन्म मरण सम दुःख कोई नाहीं।
आतमबोध ज्ञान हितकार, प्रबल अज्ञान भ्रमण संसार ॥२॥
चित्त निरोध ते उत्तम ध्यान, ध्येय वीतरागी भगवान।
ध्याता तास मुमुक्षु बखान, जे जिनमत तत्वारथ जान ॥३॥
लहि भव्यता म्होटो मान, केवल अभव्य त्रिभुवन अपमान।
चेतन लक्षण कहिये जीव, रहित चेतन जान अजीव ॥४॥
पर उपकार पुण्य करी जाण, पर पीड़ा ते पाप बखाण।
आश्रव कर्म आगमन धारे, संवर तास विरोध विचारे ॥५॥
निर्मल हंस अंश जिहा होय, निर्जरा द्वादश विधि तप जोय।
कर्म मल बंधन दुख रूप, बंध अभाव ते मोक्ष अनूप ॥६॥
पर परणति ममतादिक हेय, स्व पर भाव ज्ञान कर ज्ञेय।
उपादेय आतमगुण वृंद, जाणो भविक महासुख कंद ॥७॥
परम बोध मिथ्या दृग रोध, मिथ्या दृग दुःख हेत अबोध।
आत्म हित चिंता सुविवेक, तास विमुख जड़ता अविवेक ॥८॥
परभव साधक चतुर कहावे, मूरख जेते बंध बढावे।
त्यागी अचल राज पद पावे, जे लोभी ते रंक कहावे ॥९॥
उत्तम गुण रागी गुणवन्त, जे नर लहत भवोदधि अन्त।
जोगी जश ममता नहीं रती, मन इन्द्रिय जास ते जती ॥१०॥
समता रस सायर सो सन्त, तजत मान ते पुरुष महंत।
शूर वीर जे कंदर्प वारे, कायर काम आणा शिर धारे ॥११॥

अविवेकी नर पशु समाने, मानव जस घट आतम ज्ञान।
दिव्य दृष्टि धारी जिन देव, करता तास इन्द्रादिक सेव ॥१२॥
माहण जे ते ब्रह्म पिछाणे, क्षत्रि कर्म रिपु वश आणे।
वैश्य हानि वृद्धि जे लखे, शुद्र भक्ष अभक्ष जे भखे ॥१३॥
अथिर रूप जाणो ससार, थिर एक जिन धर्म हितकार।
इन्द्रि सुख छिल्लर जल जानो, श्रमन अनिन्द्री अगाध धरजानो ॥१४॥
इच्छा रोधन तप मनोहार, जाय उत्तम जग में नवकार।
सजम आतम थिरता भाव, भव सागर तरवा को नाव ॥१५॥
छती शक्ति गोपवे ते चोर, शिव साधक ते साध किशोर।
अति दुर्जय मन की गति जोय, अधिक कपट पापी में होय ॥१६॥
नीच सोइ पर द्रोह विचारे, ऊँच पुरुष पर विकथा निवारे।
उत्तम कनक कीच सम जाणे, हरख शोक हृदये नहिं आणे ॥१७॥
अति प्रचड अग्नि है क्रोध, दुरदम मान मातग गज जोध।
विष वेली माया जग माहीं, लोभ समो साइर कोई नाहीं ॥१८॥
नीच सगति से डरिये भाई, मलिये सदा सतर्जू आइ।
साधु सग गुण वृद्धि थाय, पापी की सगते पत जाय ॥१९॥
चपला जेम चचल नर आयु, खिरत पान जब लागे वायु।
छिल्लर अजली जल जम छाजे, इण विध जाणिम मत
मद्दा कीजे ॥२०॥
चपला तिम चचल धन धान, अचल एक जग में प्रभु नाम।
धर्म एक त्रिभुवन म सार, तन, धन, यौवन सकल असार ॥२१॥
नरक द्वार विषय नित जाणो, ते थी राग हिये नवि आणो।
अन्तर लक्ष रहित ते अध, जानत नहीं मोक्ष अरु बध ॥२२॥
जे नवि सुणत सिद्धान्त वखान, बधिर पुरुष जग में ते जान।

ऐते० ॥३॥ पृथ्वी अप तेउ अरु वाय, वनसपति म वसै सुभाय। ऐसी गति म दुख बहु भरना ऐते० ॥४॥ केतो काल इहा तोहि गयो, निरसी फेर विकल त्रय भयो । ताका दु ख कछु जाय न वरना, ऐते० ॥५॥ पशु पत्ती की काया पाई, चेतन रहे वहा लपटाई । विना विवेक कहो क्यों तरना, ऐते० ॥६॥ इम तिरजच माहीं दुख सहे, सो दु ख किनहु जाहि न कहे । पाप करम ते इह गति परना, ऐते० ॥७॥ फिरहु परके नरक के माहि, सो दुख कैसे वरनो जाहिं । क्षेत्र गध तो नाक जु सरना० ऐते० ॥८॥ अग्नि समान भूमि जह कही, कितहु शात महावन रही । सूरा खेज छिनक नहीं टरना० ऐते० ॥९॥ परम अधर्मि देव कुमारा, छेदन भेदन करहिं अपारा । तिनके बसते नाहिं उबरना० ऐते० ॥१०॥ रचक सुख जहा जीव को नाहिं, वसत याहि गति नाहि अवाहि । देखत दुष्ट महाभय डरना० एते० ॥११॥ पुण्य योग भयो सुर अवतारा, फिरत फिरत इह जगत ममारा, आवत काल देख थर हरना० ऐते० ॥१२॥ सुर मदिर अरु सुख सयोगा, निश दिन सुख सपति के भोगा, छिन इक माहि तहा ते टरना० ऐते० ॥१३॥ बहु जन्मातर पुण्य कमाया, तब कहुँ लही मनुष परजाया, ताम लगयो जरा गद मरना, ऐते० ॥१४॥ धन जोवन सब ही ठकुराइ, कम योग ते नौ निधि पाइ, सो स्वप्नान्तर कासा धरना, ऐते० ॥१५॥ निश दिन विषय भोग लपटाना, समुझ नहिं कौन गति जाना । है छिन काल आयु को चरना, ऐते० ॥१६॥ इन विषयन के सो दु ख दीनो, तब हुं तू तेही रसभीनो, नेक विवेक हृदे नहिं धरना, ऐते० ॥१७॥ पर सगति के तो दु ख पावे, तबहु ताको लाज न आवे, नीर सग वासन ज्यां जरना, ऐते० ॥१८॥

राजा कहिये बड़ो, इन्द्रिन को सरदार । आठ पहर प्रेरत रहे, उपजे कई विकार ॥ ८ ॥ मन इन्द्रि सगति किये, जीव परे जग जोय । विषयन की इच्छा बढे, कैसे शिवपुर होय ॥ ९ ॥ इन्द्रिन ते मन मारिये, जोरिये आतम माहि । तोरिये नातो राग सों, फोरिये बलसों याहि ॥ १० ॥ इन्द्रिन नेह निवारिये, टारिये क्रोध कषाय। धारिये सपति शाश्वती, तारिये त्रिभुवन राय ॥११॥ गुण अनन्त जामे लसे, केवल दर्शन आदि । केवल ज्ञान विराजतो, चेतन चिन्ह अनादि ॥ १२ ॥ थिरता काल अनादि लों, राजे जिहँ पद माहिं। सुख अनन्त स्वामी वहे, दूजो कोउ नाहिं ॥१३॥ शक्ति अनन्त विराजती, दोष न जानहि कोय । समकित गुण कर शोभतो, चेतन लखिय सोय ॥ १४ ॥ बध घटे कबहु नहिं, अविनाशी अविकार । भिन्न रहे पर द्रव्य सों, सोचे तन निरधार॥१५ पच वर्ण में जो नहीं, नहीं पच रस माहि । आठ फरस ते भिन्न है गध दोउ कोउ नाहिं ॥ १६ ॥ जानत जो गुण द्रव्य के, उपजन विनसन काल । सो अविनाशी आत्मा, चिन्हु चिन्ह दयाल ॥ १७ ॥

परमात्म पद के दोहे

सकल देव म देव यह, सकल सिद्ध म सिद्ध । सकल साधु में साधु यह, पेख निजातम रिद्ध ॥ १ ॥ फिर बहुत ससार में, फिर फिर थाके नाहि । फिरे जबहि निज रूप को, फिरे न चहु गति माहि ॥ २ ॥ हरी खात हों बावरे, हरी तारि मति कौन । हरी भजो आपो तजो, हरी रीती सुख हौन ॥ ३ ॥ परमारथ परमे नहि, परमारथ निज भ्यास । परमारथ परिचय बिना, प्राणी

रहे उदास ॥४॥ आप पराये वश परे, आपा डारो खोय। आप आप जाने नहीं आप प्रकट क्यों होय ॥५॥ दिनों दशा के कारणे सब सुख डारो खोय। विकल भयो ससार में, ताहि मुक्ति क्या होय॥ ॥ निज चन्दा की चादनी, जिहीं घट में परकाश। तिहि घट में उद्योत हो, होय तिमिर को नाश ॥७॥ जित देखत तित चादनी, जब निज नैनन जोत। नैन मिचत पेख नहीं, कौन चादनी होत ॥८॥ जे तन सों दुःख होत है, यहै अचभा मोहिं, ते तन सो ममता धरे, चेतन चेत न तोहि ॥ ९ ॥ जा तन सों तू निज कहे, सो तन तो तुझ नाहिं। ज्ञान प्राण सयुक्त जो, सो तन तो तुझ माहिं ॥ १० ॥ जाकी प्रीव प्रभाव सों, जात न कबहूँ होय। ताकी महिमा जे धरे, दुरबुद्धि जिय सोय ॥ ११ ॥ अपनी नव निधि छोड़के, मागत घर घर भीख। जान बूझ कुए परे, ताहि कहा कहा सीख ॥ १२ ॥ मूढ मगन मिथ्यात्व में, समुझे नाहिं निठोल। कानी कोडी कारणे, खोव रतन अमोल ॥ १३ ॥ कानी कौडा विषय सुख, नर भव रतन अमोल। पुण्य पुण्य हि कर चढ्यो, भेद न लहे निठोल ॥ १४ ॥ चौरासी लख में फिरे, राग द्वेष परसंग। तिन सो प्रीति न कीजिये, यहै ज्ञान को अग ॥१५॥ चल चतन तहा जाइये, जहा न राग विरोध। निज स्वभाव परकाशिये, कीजे आतमबोध ॥ १६ ॥ तेरे बाग सुज्ञान है, निज गुण फूल विशाल। ताहि विलोकहु परम तुम, छाडि आल जजाल ॥ १७ ॥ जित देखेहु तित देखिये, पुद्गल ही सों प्रीत। पुद्गल हारे हार अरु, पुद्गल जीते जीत ॥ १८ ॥ जगत फिरत कै जुग भये, सो कछु कियो विचार। चेतन अब किन चेतहु, नर भव लह अतिसार ॥ १९ ॥ दुर्लभ दस दृष्टान्त सो, सो नर भव तुम

पाय। विषय सुखन के कारणे, सर्वस चलो गँवाय ॥ २० ॥ ऐसी मति विभ्रम भई, विषयन लागत धाय। कै दिन कै छिन कै घरी, यह सुख थिर ठहराय ॥ २१ ॥ परमन सो कर युद्ध तू, करले ज्ञान कमान। ज्ञान स्वपल सो परम तू, मागे मनमथ जान ॥ २२ ॥ तुमतो पद्म समान हो, सदा अलिप्त स्वभाव। लिप्त भयो गारस (इद्रि) विषे, तामें कौन उपाव ॥ २३ ॥ अपन रूप स्वरूप सों, जो निय राखे प्रेम। सो निश्चय शिव पद लहे, मनसा वाचा नेम ॥ २४ ॥ ध्यान धरो निज रूप को, ज्ञान माहि उर आन। तुम सो राजा जगत के, चेतहु विनतो मान ॥ २५ ॥

अथ ज्ञानपचीसी (श्री बनारसीदासजी कृत)।

सुरनर तीर्यंग योनि में, नरक निगोद भवत। महा मोह की नींद सों, सोय काल अनन्त ॥ १ ॥ जैसे ज्वर के जोरसों, भोजन की रुचि जाय। तैसे कुकर्म के उदय, धर्म वचन न सुहाय ॥ २ ॥ लगै भूख ज्वर के गये, रुचि सों लेय आहार। अशुभ गये शुभ के जगे, जाने धर्म विचार ॥ ३ ॥ जैसे पवन झकोरतें, जल में उठै तरग। त्यों मनसा चचल भई परिग्रह के परसग ॥ ४ ॥ जहा पवन नहीं सचरै, तहा न जल कलोल। त्यों सब परिग्रह त्याग सों, मनसा होय अडोल ॥ ५ ॥ ज्यों काहू विषधर डसे, रुचि सो नीम चबाय। त्यों तुम ममता सों मढ़, मगन विषय सुख पाय ॥ ६ ॥ नीम रस भावे नहीं, निर्विष तन जब होय। मोह घटे ममता मिटै, विषय न वाछै कोय ॥ ७ ॥ जो सछिद्र नौका चढे, डूबइ अध अदेख। त्यों तुम भव जल में परे, बिन विवेक धर भेख ॥ ८ ॥ जहा अखडित गुण लगे, खेवट शुद्ध विचार। आतम रुचि नौका

चढ़े, पाऊ भव जल पार ॥ ९ ॥ ज्या अकुश मानै नहीं, महा मत्तगजराज । त्यों मन तृष्णा में फिरै, गनै न काज अकाज ॥१०॥ ज्यों नर दाव उपाव कैं, गहा आने गज साधि । त्यों या मन वश करन को, निर्मल ध्यान समाधि ॥ ११ ॥ [1]तिमिर रोगसों नैन ज्या, लखै और की और । त्यों तुम सशय में परे, मिथ्यामत की दौर ॥ १२ ॥ ज्यों औषध अजन किये, तिमिर रोग मिट जाय । त्यों सद्गुरु उपदेश तें, सशय वेग [2]विलाय ॥ १३ ॥ जैसे सब जादव जरे, द्वारावती की आग । त्यों माया में तुम परे, कहा जाहुगे भाग ॥ १४ ॥ दीपायनसों ते बचे, जे तपसी निर्ग्रंथ । तज माया समता गहो, यही मुक्ति को पथ ॥ १५ ॥ ज्यों कुधातु के फेट सों, घट बध कचन काति । पाप पुण्यकरी त्यों भये, मूढातम बहु भाति ॥ १६ ॥ कचन निज गुण नहिं तजे, वान हीन के होत । घट घट अतर आतमा, सहज स्वभाव उद्योत ॥ १७ ॥ पन्ना पीट पकाइये, शुद्ध कनक ज्यों होय । त्या प्रगटे परमातमा, पुण्य पाप मल खोय ॥ १८ ॥ पर्व राहु के ग्रहण सों, [4]सूर [5]सोम [6]छवि छीन । सगति पाय कुसाधु की, सज्जन होय मलीन ॥१९॥ निंबादिक चन्दन करै, मलियाचल का बास । दुर्जन तैं सज्जन भये, रहत सुसाधु के पास ॥ २० ॥ जैसे [7]ताल सदा भरे, जल आवे चहु ओर । तैसे आश्रव द्वारसों, कर्म बंध को जोर ॥ २१ ॥ ज्यों जल आवत [8]मूंदिये, सूकै सरवर पानी । तैसे सवर के किये, कर्म

१-तिमिर = आंख में अंधेरी आना । २-विलाय = नाश होवे । ३-वान = वर्ण । ४-सूर = सूरज । ५-सोम = चन्द्र । ६-छवी = प्रकाश । ७-ताल = तलाव । ८-मूंदिये = बन्ध रोक ।

निर्जरा जानी ॥ २२ ॥ ज्यों बूटी सयोग तैं, पारा मूर्छित होय। त्यों पुद्गल सा तुम मिले, आतम सकता खोय ॥ २३ ॥ सेच रटाइ साजिये, पारा परगट रूप । शुद्ध ध्यान अभ्यास तें, दर्शन ज्ञान अनूप ॥ २४ ॥ कही उपदेश बनारसी, चेतन अब कछु चेतु, आप बुमावत आपको, उदय करन के हेतु ॥ २५ ॥

इति श्री ज्ञानपचीसी सम्पूर्णम् ॥

पच परमेष्टि की स्तुति तथा ध्यानादि
श्री द्रव्य सग्रह छद

चौपाई

घार घातिया कम निवारी । ग्यान दरस सुख बल परकारा ॥
परमौन्नारिक तनु गुणुवत । ध्याऊँ शुद्ध सन्त अरहत ॥१॥
करम नाय नासै सब थोक । देखै जानैं लोकालोक ॥
लोक शिखर थिर पुरुषाकार । ध्याऊँ सिद्ध सुखी अविकार ॥२॥
दरशन ग्यान प्रधान विचार । व्रत तप वीरज पचाचार ॥
धरें धरावैं और निवास । ध्याऊँ आचारज सुख रास ॥३॥
सम्यक् रत्न त्रय गुण लीन । सदा धरम उपदेश प्रवीन ॥
साधुनी मैं मुख करुनाधार । ध्याऊँ उपाध्याय हितकार ॥४॥
दर्शन ज्ञान सुगुण भडार । परम मुनिवर मुद्राधार ॥
साधे शिव मारग आचार । ध्याऊँ साधु सुगुण दातार ॥५॥
तन चष्टा तजी आसन माडी । मौनधारी चिंता सब छाडी ॥
थीर है मगन आप में आप । यह उत्कृष्ट ध्यान निहपाप ॥६॥
जब लों मुगति चहैं मुनिराज । तब लौं नहीं पावे शिवराज ॥
सब चिंता तज एक स्वरूप । सोई निहचै ध्यान अनूप ॥७॥

दोहा—खाना चलना सोवना, मिलना वचन विलास ।
ज्यों ज्यों पच घटाइये, त्यों त्यों ध्यान प्रकाश ॥ ८ ॥

चौपाई

सम्यक् रत्न त्रय जियमाहीं । निज तजा और द्रव म नाहीं ॥
तातै तीनों में निरुपाप । शिव कारण यह चेतन आप ॥९॥

(दोहा) आप आप म आपको, दरवे दरशन जोय ।
जान पना सो ज्ञान है, थिरता चारित्रसाय ॥१०॥
अशुभ भाव निवार के, शुभ उपयोग विसतार ।
सुमिति गुपति व्रत भेदसों, सो चारित व्यवहार ॥११॥

चौपाइ

बाहिर परिणति चचल जोग । अन्तर भाव समन उपयोग ।
दोनों किये बढ़ै ससार । रोकें निहचै चारित सार ।
चारित निहचै अरु व्यवहार । उभय मुक्ति कारन निरधार
होंही ध्यान तैं दोनों रास । यातै ध्यानजतन अभ्यास ॥

राग निवारण अग

अरे जीव भव वन विषै, तरा कौन सहाय
जिनके कारण पचि रहा, सतो तर
ससारी को देखिल, सुखा न
अब तो पीछा छोड़िए, मत धर
झूठे जग क कारणे, तू मत
तू तो रीता ही रहै, धन

तन, धन संपति पाय के, मगन न हो मन माय ।
कैसे सुखिया होयगा, सोवे लाय लगाय ॥४॥
ठाठ देख भूले मति, ए पुद्गल पर याय ।
देखत देखत बाहरै, जासी थिर न रहाय ॥५॥
लूटेंगे ज्ञानादि धन, ठग सम यह संसार ।
मीठे वचन उचारि के, मोहफाँसी गल डार ॥६॥
मोह भूत तोकौं लग्यो, करे न तनक विचार ।
ना माने तो परखिले, मतलब को संसार ॥७॥
काया ऊपर बाहरे, सब सू अधिकी प्रीत ।
या तो पहले सजन मे, देगी दगो नचीत ॥८॥
विषय दुखन को सुख गिनै, कहूँ कहाँ लगि भूल ।
आँख छता अँधा हुआ, जाणपणा में धूल ॥९॥
नित प्रति देखत ही रहे, उनै अस्त गति भान ।
अजहुँ न ज्ञान भयो कछु, तू तो बड़ो अजाण ॥१०॥
किसके बहे निश्चिंत तू, सिर पर फिरे जु काल ।
बाधे है तो बाध ले, पानी पहिले पाल ॥११॥
आया सो सब ही गया, अवतारादि विशेष ।
तू भी यों ही जायगा, इण में मीन न मेख ॥१२॥
यो अवसर फिर ना मिलै, अपनो मतलब सार ।
चुकते दाम चुकाय दे, अब मत राख उधार ॥१३॥
कैसे गाफिल हो रहा, निवड़ा आत करार ।
निपजी खेती देय क्यों, बाटा सटे गँवार ॥१४॥
धर्म विहार कियो नहीं, कीनो विषय बिहार ।
गाठ खाय रीते चले, आके जग हटवार ॥१५॥

काज करत पर घात के, अपना काज बिगार।
सीत निवारे जगत को, अपनी झूंपरा बार ॥१६॥
नहिं विचार तैं ने किया, करना था क्या काज।
दुखै होयगा कम फल, तब लपेगी लाज ॥१७॥
भूठे मसारीत की, छूटेगी जब साज।
इनसौं अलगा होयगा, तब सुधरेगा काज ॥१८॥
अपनी पूँजी सू करो, निश्चय कार विहार।
बाप्या सा ही भोग ल, मति कर और उधार ॥१९॥
नया कम ग्रण कादि के, करसी कार विहार।
दणा पदमी पार का, किम होसी छुटकार ॥२०॥
विषय भाग किंपाक सम, लखि दुख फल परिणाम।
जब विरक्त तू होयगा, तब सुधरेगा काम ॥२१॥
येरे मन मरे पथिक, तू न जाव बहँ ठौर।
बटमार। पाँच जहाँ, करैं साह सूं चोर ॥२२॥
आरम विषय कषाय मू, कीनी बहुत हि बार।
कछु कारज सरिया नहीं, उल्टा हुआ सुधार ॥२३॥
काहै सेहा में सदा, सुनै निपुन चित लाग।
गुरु समझाय कठिन मूं, उपनै तउ न विराग ॥२४॥
गैर हुआ जो कुछ हुआ, अब करनो नहिं जाग।
विना विचारे तैं किया, ताको ही फल भोग ॥२५॥

मेरी भावना

(जीवन सुधार नित्य पाठ)

जिसने रागद्वेषकामादिक जीते, सब जग जान लिया,
सब जीवों को मोक्ष मार्ग का, निस्पृह हो उपदेश दिया ।
बुद्ध,वीर,जिन,हरि,हर ब्रह्मा, या उसको स्वाधीन कहो,
भक्ति भाव से प्रेरित हो यह, चित्त उसी में लीन रहो ॥१॥
विषयों की आशा नहिं जिनके, साम्य भाव धन रखते हैं,
निज परके हित साधनमें जो, निशदिन तत्पर रहते हैं ।
स्वार्थत्याग की कठिन तपस्या, बिना खेद जो करते हैं,
ऐसे ज्ञानी साधु जगत के, दुख समूह को हरते हैं ॥२॥
रहे सदा सत्संग उन्हीं का, ध्यान उन्हीं का नित्य रहे,
उन ही जैसी चर्या में यह चित्त सदा अनुरक्त रहे ।
नहीं सताऊँ किसी जीव को,झूठ कभी नहिं कहा करूँ,
पर धन वनिता* पर न लुभाऊँ, संतोपामृत पिया करूँ ॥३॥
अहंकार का भाव न रक्खूँ, नहीं किसी पर क्रोध करूँ,
देख दूसरों की बढ़ती को, कभी न ईर्षा भाव धरूँ ।
रहे भावना ऐसी मेरी, सरल सत्य व्यवहार करूं,
बने जहां तक इस जीवन में औरों का उपकार करूं । ४॥
मैत्रीभाव जगत में मेरा सब जीवों से नित्य रहे,
दीन दुखी जीवों पर मेरे उर से करुणा स्रोत बहे ।
दुर्जन क्रूर-कुमार्गरतों पर क्षोभ नहीं मुझको आवे,
साम्यभाव रक्खूँ मैं उन पर ऐसी परिणति हो जावे ॥५॥

*स्त्रियां- 'वनिता'' की जगह 'भर्ता' पढ़े ।

गुणीजनों को देख हृदय में, मेरे प्रेम उमड़ आवे,
बने जहाँ तक उनकी सेवा, करके मन यह सुख पावे।
होऊँ नहीं कृतघ्न कभी मैं, द्रोह न मेरे उर आवे,
गुण ग्रहण का भाव रहे नित, दृष्टि न दोषों पर जावे॥६॥
कोई बुरा कहो या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे,
लाखों वर्षों तक जीऊँ या, मृत्यु आज ही आ जावे।
अथवा कोई कैसा ही भय, या लालच देने आवे,
तो भी न्यायमार्ग से मेरा कभी न पद डिगने पावे।॥७॥
होकर सुख में मग्न न फूले, दुख में कभी न घबरावे,
पर्वत-नदी श्मशान भयानक अटवी से नहिं भय खावे।
रहे अडोल अकम्प निरंतर, यह मन दृढ़तर बन जावे,
इष्टवियोग अनिष्टयोगमें, सहनशीलता दिखलावे॥८॥
सुखी रहें सब जीव जगत के, कोई कभी न घबरावे,
वैर पाप-अभिमान छोड़ जग, नित्य नये मंगल गावे।
घर घर चर्चा रहे धर्म की, दुष्कृत दुष्कर हो जावें
ज्ञान-चरित उन्नत कर अपना, मनुज जन्म फल सब पावें॥९॥
इति भीति व्यापे नहिं जग में, वृष्टि समय पर हुआ करे,
धर्मनिष्ठ होकर राजा भी, न्याय प्रजा का किया करे।
रोग मरी दुर्भिक्ष न फैले, प्रजा शान्ति से जिया करे,
परम अहिंसा धर्म जगत में, फैल सर्वहित किया करें॥१०॥
फैले प्रेम परस्पर जग में, मोह दूर पर रहा करे,
अप्रिय कटुक कठोर शब्द नहिं, कोई मुख से कहा करे।
बनकर सब 'युग-वीर' हृदय से, देशोन्नति रत रहा करें
वस्तुस्वरूप विचार खुशी से, सब दुख संकट सहा

व्याख्यान के प्रारम्भ की स्तुति

वीर हिमाचल से निकसी, गुरु गौतम के मुख कुण्ड ढरी है ।
मोह महाचल भेद चली, जगकी जड़ता सब दूर करी है ॥ १ ॥
ज्ञान पयोदधि माँथ रली, बहु भग तरंगन सें उछरी है ।
ता सूची सारद गङ्गनदी, प्रणमी अंजली निज सीस धरी है ॥ २ ॥
ज्ञानसु नीर भरी सलिला, सुरधेनु प्रमोद सुखीर निध्यानी ।
कर्म जो व्याधी हरन्त सुधा अघमेल हरन्त शीवा कर मानी ॥ ३ ॥
जैन सिद्धान्त की ज्योति बड़ी, सुतत्त्व स्वरूप महा सुखदानी ।
लोक अलोक प्रकाश भयो, मुनिराज बखानत है निज बानी ॥ ४ ॥
सोभित देव विषे मघवा, अरु वृन्द विषे शशी मंगलकारी ।
भूप समूह विषे बली चक्र, प्रति प्रगटे बल केशव भारी ॥ ५ ॥
नागीन में धरणीन्द्र बड़ो, अरु है असुरीन मे चमरेन्द्र अवतारी ।
ज्युँ जिन शासन संघ विषे, मुनिराज दीये श्रुत ज्ञान भण्डारी ॥ ६ ॥
कैसे कर केतकी कणर एक कहियो जाय, आक दूध गाय दूध अन्तर घणेरो है ।
रिरी होत पीली पिण होंस कर कंचन की, कहाँ काग वानी कहाँ कोयल की टेरा है ॥
कहाँ भानु तेज भयो आगियो बिचारा कहाँ,
पूनमका उजवाणो कहाँ अमावस अँधेरो है ।
पक्ष छोड़ पारखी निहाळ देख लिगाकर, जैन वैन और वैन अंतर घणेरो है ॥
वीतराग वाना साची मोक्ष की निशानी जानी
महा सुकृत की खानी ज्ञानी आप मुख बखाणी है ।
इनको आराधक तिरिया है अनन्त जीव सोही निहाल जाण सरधा मन आणी है ॥
सरधा है सार धार सरधासे बेड़ो पार, सरधा बिन जीव खुवार निश्चय कर मानी है
वाणी तो घणारी पण वीतराग तुल्य नहिं इनके सिवाय और छोरा की कहानी है

सस्ता-साहित्य-मंडल, अजमेर

स्थापना सन् १९२५ ई०, मूलधन ४५०००)

उद्देश्य—सस्ते से सस्ते मूल्य में प्रेम धार्मिक नैतिक, समाज सुधार सम्बन्धी और राजनैतिक साहित्य को प्रकाशित करना जो देश को स्वराज्य के लिए तैयार बनाने में सहायक हो, नवयुवकों में नवजीवन का संचार करे, स्त्री-स्वातन्त्र्य और अछूतोद्धार आन्दोलन को बल मिले।

संस्थापक—सेठ घनश्यामदासजी बिड़ला (सभापति) सेठ जमनालालजी बजाज आदि सात सज्जन।

मंडल से—राष्ट्र-निर्माणमाला और राष्ट्र-जागृतिमाला ये दो मालायें प्रकाशित होती हैं। पहले इनका नाम सस्तीमाला और प्रकीर्णमाला था।

राष्ट्र-निर्माणमाला (सस्तीमाला) में प्रौढ़ और सुशिक्षित लोगों के लिए गंभीर साहित्य की पुस्तकें निकलती हैं।

राष्ट्र-जागृतिमाला (प्रकीर्णमाला) में समाज सुधार ग्राम-संगठन, अछूतोद्धार और राजनैतिक जागृति उत्पन्न करनेवाली पुस्तकें निकलती हैं।

स्थाई ग्राहक होने के नियम

(१) उपर्युक्त प्रत्येक माला में वर्ष भर में कम से कम सोलह सौ पृष्ठों की पुस्तकें प्रकाशित होती हैं। (२) प्रत्येक माला की पुस्तकों का मूल्य डाक व्यय सहित ४) वार्षिक है। अर्थात् दोनों मालाओं का ८) वार्षिक। (३) स्थाई ग्राहक बनने के लिए केवल एक बार ॥) प्रत्येक माला की प्रवेश फीस ली जाती है। अर्थात् दोनों मालाओं का एक रुपिया। (४) किसी माला का स्थायी ग्राहक बन जाने पर उसी माला की पिछले वर्षों में प्रकाशित सभी या चुनी हुई पुस्तकों की एक एक प्रति ग्राहकों को लागत मूल्य पर मिल सकती है। (५) माला का वर्ष जनवरी मास से शुरू होता है। (६) जिस वर्ष से जो ग्राहक बनते हैं उस वर्ष की सभी पुस्तकें लेनी होती हैं। यदि उस वर्ष की कुछ पुस्तकें उन्होंने पहले से ही ले रखी हों तो उनका नाम व मूल्य कार्यालय में लिख भेजना चाहिए। उस वर्ष की शेष पुस्तकों के लिए कितना रुपिया भेजना चाहिये, यह कार्यालय से सूचना मिल जायगी।